देवगढ़ स्थित जैन कला केन्द्र—

देवगढ़-दर्शन

लेखक—
उत्तमचन्द राकेश शास्त्री, एम. ए.
व्याख्याता-श्री वर्णी जैन इन्टर कालेज, ललितपुर

प्रथमावृत्ति] [मूल्य रु० १-२५
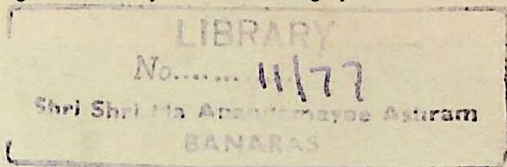
वर्तमान प्रबंध समिति के
कर्मठ सेवाभावी मंत्री–

श्री कपूरचन्द घुखारिया, ललितपुर

मन्दिर नं० १२, बाह्य मण्डप
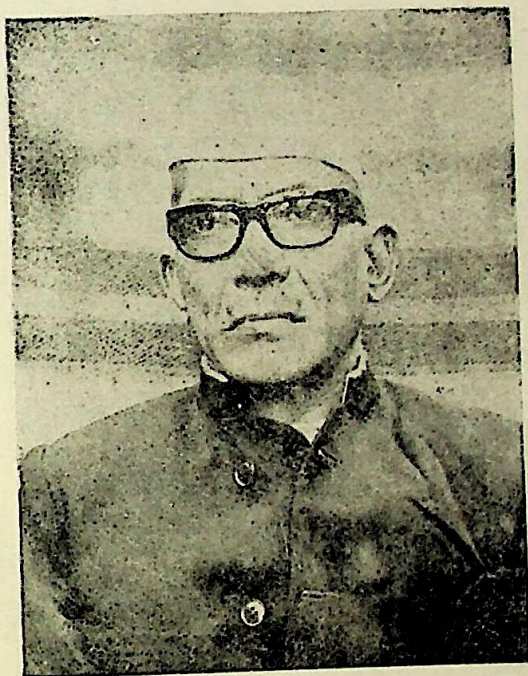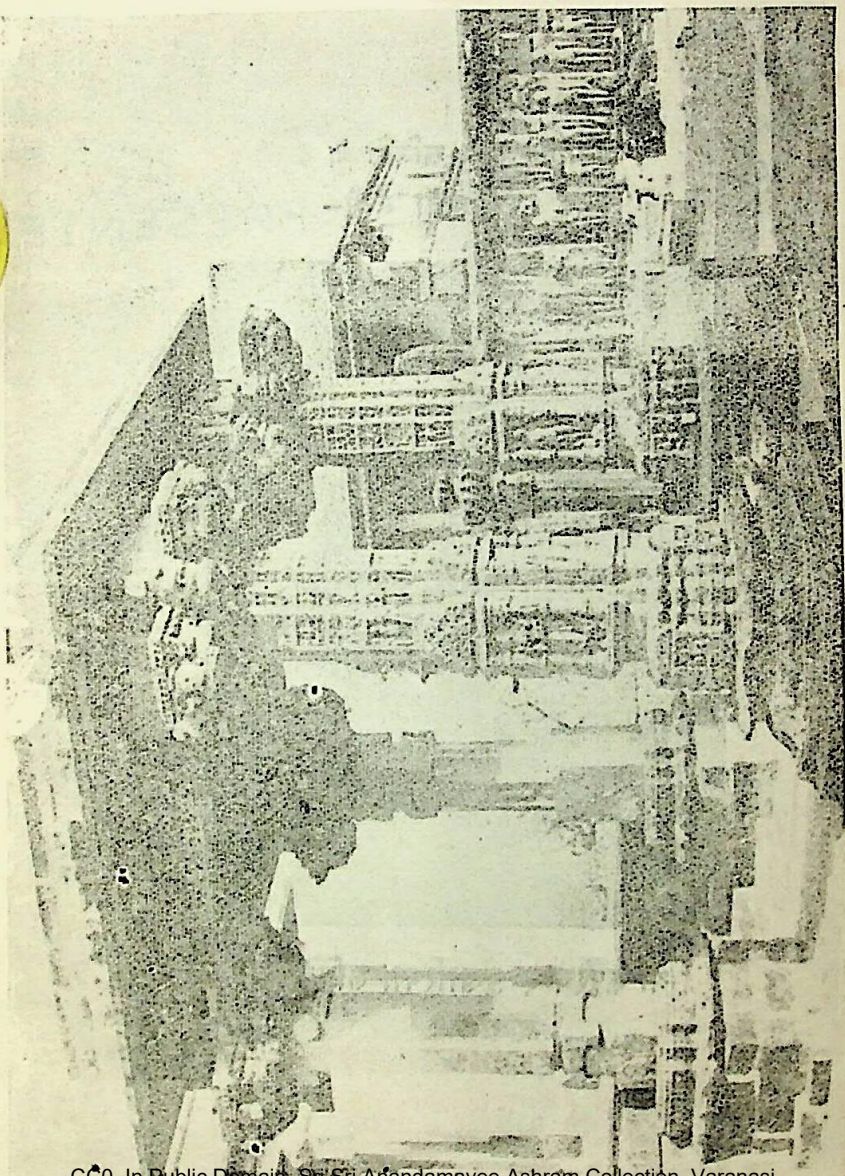
॥ श्री शांतिनाथाय नमः ॥

* दो शब्द *

आप सभी उत्तर भारत के इस महान कला युक्त गरिमा से परिपूर्ण पुण्य स्थली देवगढ़ से किसी न किसी रूप में अवश्य परिचित हैं। यह क्षेत्र इतिहास की प्राचीनतम परम्परा का द्योतक होकर भी अपनी गौरव गाथा एवं निर्माण के बारे में सदैव मौन है। बुन्देलखण्ड की गंगा अजस्त्र प्रवाहित बेतवा के किनारे स्थित यह कलात्मक क्षेत्र सदैव से उपेक्षित रहा और अपनी गरिमा के पारखी के अभाव में स्थिति प्रश्न को मौन निमन्त्रण देता रहा।

वह क्षेत्र केवल जैन कला का ही नहीं, अपितु तत्कालीन समस्त मूर्तिकला का एक स्वर्ण युग रहा होगा, ऐसा मेरा विश्वास है, उसी का फल अभी भी परिलक्षित हो रहा है। जहाँ एक ओर पर्वत पर जैन मूर्तिकला के अद्‌भुत स्वरूप द्रष्टव्य है वहां दूसरी ओर नीचे गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर, जिसे गुप्ता मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है। निश्चित ही यहां कला का उच्चतम रूप देखने को मिलता है।

यह जैन मूर्तिकला का और स्थापत्य कला का विशालतम तीर्थस्थल अपने अतीत एवं वर्तमान मूर्तिकला का अत्यन्त समृद्ध स्वर्णयुग रहा है, इसके प्रबल प्रमाण यहाँ के प्राचीन प्रस्तर शिलालेख हैं। प्रारम्भिक मूर्ति कला से लेकर श्रेष्ठीतम मध्य युग की मूर्तिकला के दर्शन हमें यहाँ सुलभ हैं। कालदोष के प्रभाव के कारण यहाँ की मूर्तिकला खण्डित हुई, किन्तु फिर भी विकास के,

चरण बढ़ते रहे। मध्यकालीन संरक्षकों ने इसे उस तरह सुरक्षित नहीं किया जितना कि होना चाहिये था। वह युग मुगलकालीन था। किन्तु आज की पीढ़ी का ध्यान कला की ओर है और उसी का परिणाम है कि विगत ५० वर्षों से यह क्षेत्र प्रगति की ओर है।

इस क्षेत्र के विकास में, बुन्देलखण्ड के लब्ध प्रतिष्ठित स्व० सेठ पन्नालाल जी टड़ैया का महान सहयोग रहा है। सेठ पन्नालाल जी की प्रेरणा से इस क्षेत्र के विकास हेतु स्थानीय समाज तथा समस्त भारतवर्षीय दि० जैन समाज ने महान सहयोग दिया। जिनमें श्री सि० गनपतलाल भैयालाल जी गुरहा, सि० भगवानदास जी सर्राफ, बच्चूलाल जी सर्राफ, श्री मटरूलाल जी वैनाड़ा, श्री नाथूराम जी सिंघई, स्व० परमानन्द जी बरया, श्री मान् साहू शान्तिप्रसाद जी, स्व० सर सेठ हुकमचन्द जी इन्दौर आदि जिनके परिश्रम के फलस्वरूप आज क्षेत्र अपनी गरिमा को अक्षुण्य बनाये हैं। देश के समस्त दानियों, साधर्मियों ने बहुत बड़ा आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। फिर भी अभी इसे अंशमात्र भी पूर्ण नहीं माना जा सकता है बिखरी मूर्तियों का एकत्री कारण उनके स्थापना की व्यवस्था तथा रख रखाव की अति आवश्यकता है। ललितपुर जिला के माननीय जिलाधीश श्री रवि माथुर के हम विशेष आभारी हैं, जिनकी कृपा और अभिरुचि देवगढ़ क्षेत्र के प्रति निरन्तर पायी जाती है।

इस क्षेत्र के परिचयात्मक लेख, निबन्ध आदि तो कई बार विद्वानों द्वारा प्रकाशित किये जाते रहे हैं। डा. क्लाउस ब्रून, बर्लिन (जर्मनी) निवासी ने तो अपना हृदय ही इसकी खोज में उड़ेल

दिया है । और इसकी गरिमा को देश विदेश में स्थापित कर दिया। प्रो० डा० भागचन्द जी जैन शासकीय महाविद्यालय दमोह ने अपना शोधपूर्ण निबन्ध लिखकर Ph.D. की उपाधि प्राप्त की। स्व० डा० वृन्दावनलाल जी वर्मा जैसे इतिहासज्ञ विद्वान ने "देवगढ़ की मुस्कान" नामक उपन्यास के द्वारा क्षेत्र की महत्ता को बढ़ाया। किन्तु इसके उपरान्त देवगढ़ का संक्षिप्त परिचयात्मक इतिहास प्राप्त नहीं हो सका। समस्त विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में इसकी विस्तृत जानकारी दी, किन्तु सामान्य पाठक इसे ग्राह्य करने में असमर्थ हैं। मेरा मन इस बात से संतुष्ट नहीं हुआ। मैंने अपनी इस भावना को विगत मेले के अवसर पर भी प्रस्तुत किया था। एक बार मैंने यह विचार श्री उत्तमचन्द्र जी 'राकेश' शास्त्री एम० ए० प्राध्यापक संस्कृत विभाग श्री वर्णी जैन इन्टर कालेज, ललितपुर के सामने भी रखा, प्रसन्नता है कि उन्होंने मेरी इस भावना को मूर्त रूप दे दिया। मैं समझता हूं कि यह संक्षिप्त इतिहासात्मक परिचय लोगों को अवश्य मार्गदर्शन का कार्य करेगा।

मैं श्री राकेश जी के सफल प्रयास के लिये उन्हें अपनी हार्दिक बधाई एवं आभार धन्यवाद देता हूँ। क्षेत्रीय समिति के सभी पदाधिकारी एवं सदस्यगणों का भी मैं आभारी हूं जिनके विविध सहयोग के कारण मैं क्षेत्र की कुछ सेवा कर सका हूँ और क्षेत्र किंचित प्रगति की ओर बढ़ सका है।

भवदीय—

कपूरचन्द बुखारिया

ललितपुर.

श्री देवगढ़ क्षेत्र दि० जैन प्रबन्ध समिति।

नम्र निवेदन

भारत की पवित्रभूमि बुन्देली वसुन्धरा का अपना एक स्थान है। जहाँ एक ओर यहाँ की वीरता एवं राष्ट्रप्रेम की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं वहो दूसरी ओर यहाँ का ईशा पूर्व से लेकर आधुनायतन अवर्णनोय एवं अनुपम गरिमापूर्ण सुन्दर साँस्कृतिक वैभव भी प्रसिद्ध है।

इस बुन्देली वसुन्धरा में प्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थ श्री १०.८ देवगढ़ जी का विशिष्ट स्थान हैं। इस क्षेत्र की खोज सर्व प्रथम जनरल कनिधंम द्वारा १७७१ में की गई और पुरा-तत्त्व विभाग का एक गजेटियर तैयार किया गया। उसी के आधार पर श्री साहनी सा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि अनेकों विद्वानों ने इसकी मूर्तिकला तथा वास्तुकला का अध्ययन किया।

सन् १९३३ में यह विशाल कला तीर्थ ललितपुर नगर के प्रसिद्ध समाजसेवी श्री पन्नालाल जी टड़ैया, श्री बच्चूलाल जी सर्राफ आदि को ब्रिटिश सरकार से हस्तान्तरित हुआ। सर्व प्रथम इस क्षेत्र की दशा देखकर जीर्णोद्धार की भावना से प्रेरित होकर आगरा निवासी श्री मटरूमल उत्तमचन्द जी बैनाड़ा ने इसका जीर्णोद्धार कराया तथा क्षेत्र पर बिखरी मूर्तियों को एक परकोटे में लगाकर उन्हें सुरक्षित किया।

इस क्षेत्र के दर्शन करने का कई बार सौभाग्य मिला किन्तु सदैव एक ही बात खटकती रही कि इसका कोई परि--

चयात्मक इतिहास नहीं, जो होना अति आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह संक्षिप्त परिचय लिखने का दुःसाहस किया है।

यद्यपि इस परिचय पुस्तिका से पूर्व अनेकों मूर्धन्य विद्वानों ने इस पर लिखा है किन्तु इसका वर्णन इतना विशाल एवं वैभव पूर्ण है कि सामान्य जन इसकी महत्ता को नहीं समझ सकता। वर्लिन (जर्मन) के प्रसिद्ध विद्वान डा॰ क्लाउस ब्रून ने "Jain Immages of Deogarh" (देवगढ़ की जैन मूर्ति कला) पर एक महाग्रन्थ लिखा है। दूसरे प्रो॰ डा॰ भागचन्द जैन शासकीय महाविद्यालय दमोह ने भी "देवगढ़ की जैन कला" पर एक शोध प्रबन्ध लिखा है। किन्तु इतने गम्भीर हैं कि सामान्य दर्शनार्थी एवं पर्यटक इन्हें सहज ही नहीं समझ सकता। अतः इसी भावना से प्रेरित होकर मेरे मन में श्री देवगढ़ जी का "सक्षिप्त परिचय" लिखने का विचार आया।

देवगढ़ को मैंने जैसा देखा, वह इस परिचय पुस्तिका के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत है। मेरी मान्यता इस क्षेत्र के विकास के सम्बन्ध में महाभारत काल से है।

मेरी मान्यता से यह एक विशाल वैभव सम्पन्न क्षेत्र रहा होगा। महाराजा शिशुपाल की राजधानी चन्देरी थी और भगवान श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध चन्देरी में किया था। यह क्षेत्र चन्देरी से केवल ११ मील दक्षिण पूर्व में स्थित है। निश्चित ही यह वैभव सम्पन्न क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा होगा। इसकी सीमायें चन्देरी के चतुर्दिग काफी दूर रही होंगी।

देवगढ़ की मूर्तिकला से चन्देरी खन्दार जी, थूबोन जी, सेरोन जी चाँदपुर, जहाजपुर, दूधई इत्यादि अनेकों जैन तीर्थ स्थलों की मूर्तिकला में अति निकटता का साम्य है। चन्देरी की जैन मूर्तिकला देवगढ़ की मूर्तिकला से पूर्णता: समकालीन प्रतीत होती है। अत: मेरी मान्यता इस क्षेत्र के स्थापन के सम्बन्ध में महाभारत कालीन है। इसके साथ ही मेघदूत के रचयिता महाकवि कालिदास के पूर्व मेघदूत के ४४--४५ वें श्लोकों से यह भली प्रकार सिद्ध है कि यह क्षेत्र उस समय मूर्तिकला से परिपूर्ण था। यहाँ श्रेष्ठतम देवालय थे। महाकवि कालिदास के जन्म के सम्बन्ध में भारतीय एवं विदेशी विद्वान एकमत नहीं। फिर भी कुछ विद्वानों ने इन्हें ई पूर्व द्वितीय शताब्दी को मान्यता दी है। अत: क्षेत्र की मूर्ति कला के स्थापन में कोई सन्देह नहीं—

महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' के श्लोक नं० ४४ में लिखा है—

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित वसुधा गन्ध सम्पर्करम्य:
स्त्रोतो रन्ध्र ध्वनितसुभंगदन्तिभि: पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषो र्देव पूर्वं गिरिं ते
शीती वायु: परिणामयिता काननो दुम्बराणाम्॥

(मेघदूतम श्लोक सं० ४४)

अनुवाद—मेघ ! तुम्हारे द्वारा वृष्टि से धरती की गन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित सूंड के छिद्रों से ध्वनि पूर्वक हाथियों से पान किया गया तथा जंगल के गूलरों को परिपक्व करने वाला शीतल वायु देवगिरि की ओर जाने की इच्छा वाले तुमको पंखा झलेगा।

(टिप्पणी) कवि ने यक्ष के माध्यम से मेघ को उज्जयिनी की छोटी-मोटी नदियों (जिनमें क्षिप्रा, गन्धवती तथा गम्भीरा बिशेष रूप से उल्लेखनीय है) की विविध विशेषताओं से लाभान्वित हो, देवगिरि पर्वत की ओर भेजा है, आलोचकों के अनुसार देवगिरि झांसी जिले के अन्तर्गत ललितपुर के समीप देवगढ़ नाम से प्रसिद्ध स्थान को स्वीकार करते हैं। देवगढ़ जैनियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है। यहां पर उपलब्ध मूर्तियां भारतीय शिल्प तथा स्थापत्यकला के अविस्मरणीय ध्वंसावशेष के रूप में गौरवपूर्ण स्मारक है।

डा० विलसन ने भी देवगिरि का यही स्थान लिखा है वे मानचित्र के आधार पर –

Devagiri is the same mountain of the duty and may perheps be the same with a place called in the map Deogarh situated south of the Chumbul in the Centre of the province of Malwa. This hills is the site of a Temples of kartikeya at Deogarh. P. 42

मैं जब भी देवगढ़ विद्वानों के साथ गया, सदैव मेरी दृष्टि इतिहास की जानकारी पर रही। इस सम्बन्ध में मैंने जैन धर्म के प्रसिद्ध विद्वान श्री पं० परमेष्ठीदास जी न्यायतीर्थ से भी प्रेरणा प्राप्त की।

"मैं इतिहास का ज्ञाता नहीं हूँ न ही मूर्तिकला विशेषज्ञ। फिर भी अपनी रुचि के अनुसार मैंने सामग्री संयोजित की है। सामग्री में हमीरपुर गजेटियर, झांसी गजेटियर, डा० क्लाउस ब्रून का Jain Imnges of Deogarh (जैनइमेजेज आफ देवगढ़)

डा० भागचन्द जैन की "देवगढ़ को मूर्ति कला", प्रो० श्री विहारीलाल बबेले नेहरू महाविद्यालय ललितपुर आदि विद्वानों के लेखों का भी सहारा लिया।

इसके साथ ही श्री कपूरचन्द जी बुखारिया, मंत्री श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ का हृदय से आभारी हूँ जिसकी प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हुआ। वे मुझे सदैव इस पुण्यकार्य के लिये प्रेरित करते रहे।

इस परिचय में त्रुटियाँ तो निश्चित ही हैं, यह मैं स्वयं अनुभव करता हूं, लेकिन इतिहासज्ञों के हाथ में इसे सौंप रहा रहा हूं कि वे इसके सम्बन्ध में अपनी अधिकृत जानकारी जोड़ें और इसे सही दिशा दें।

मैं उन सभी अपने निकटतम साथियों का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इसके लिखने में अपना सहयोग दिया है।

इतिहास परक विज्ञजन मेरी लघु बुद्धि के कारण मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। मैंने केवल "बौनेपन" का ही कार्य किया है जिसमें मेरा अधिकार नहीं है, फिर चंचलता से उत्प्रेरित होकर, आपके माध्यम से इस परिचय को प्रातः स्मरणीय पावन तीर्थ राज कला धाम देवगढ़ के श्री चरणों में समर्पित कर रहा हूं। देखिये, कहां तक बन पड़ा है।

त्रुटियों के लिए सदैव क्षमाप्रार्थी हूँ।

विनयावनत—

दिनांक ४ अगस्त, १९७४ उत्तमचन्द राकेश

शास्त्री, एम० ए०

प्राध्यापक, श्री वर्णी जैन इ० का० ललितपुर

उपाध्याय परमेष्ठी की अद्वितीय प्रतिमा
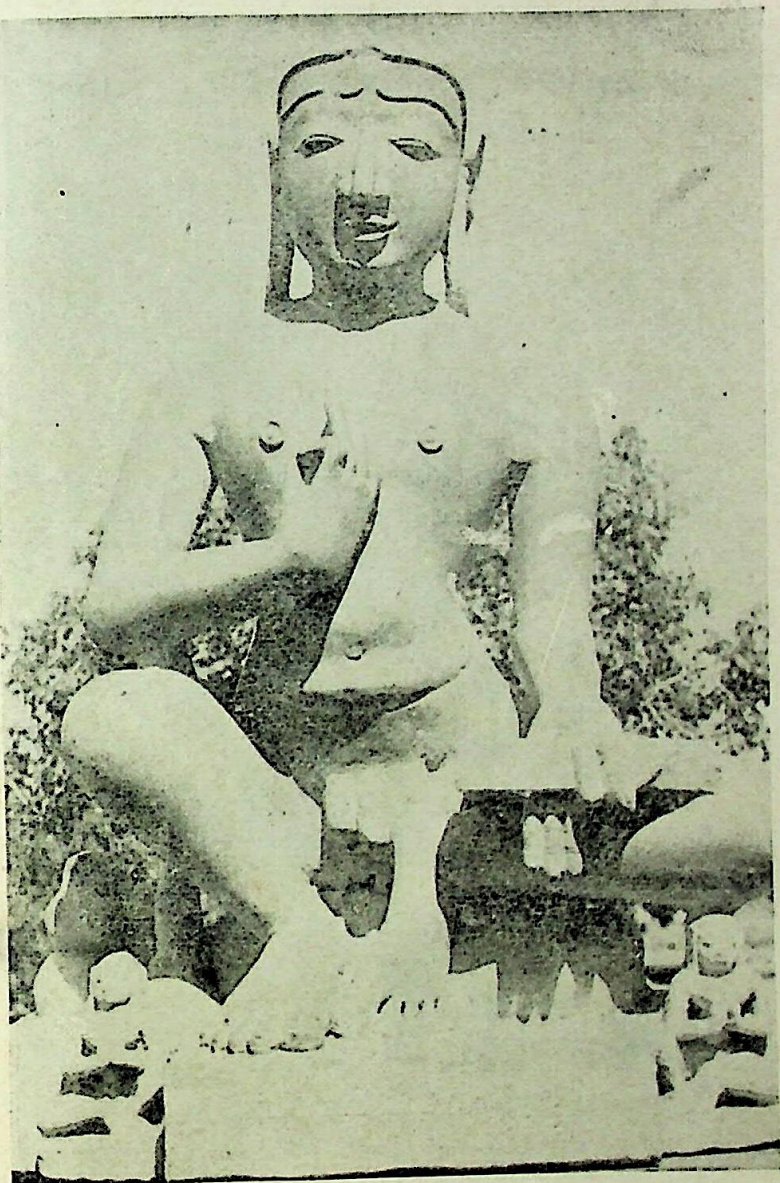
भगवान बाहुबलि की भव्य मूर्ति
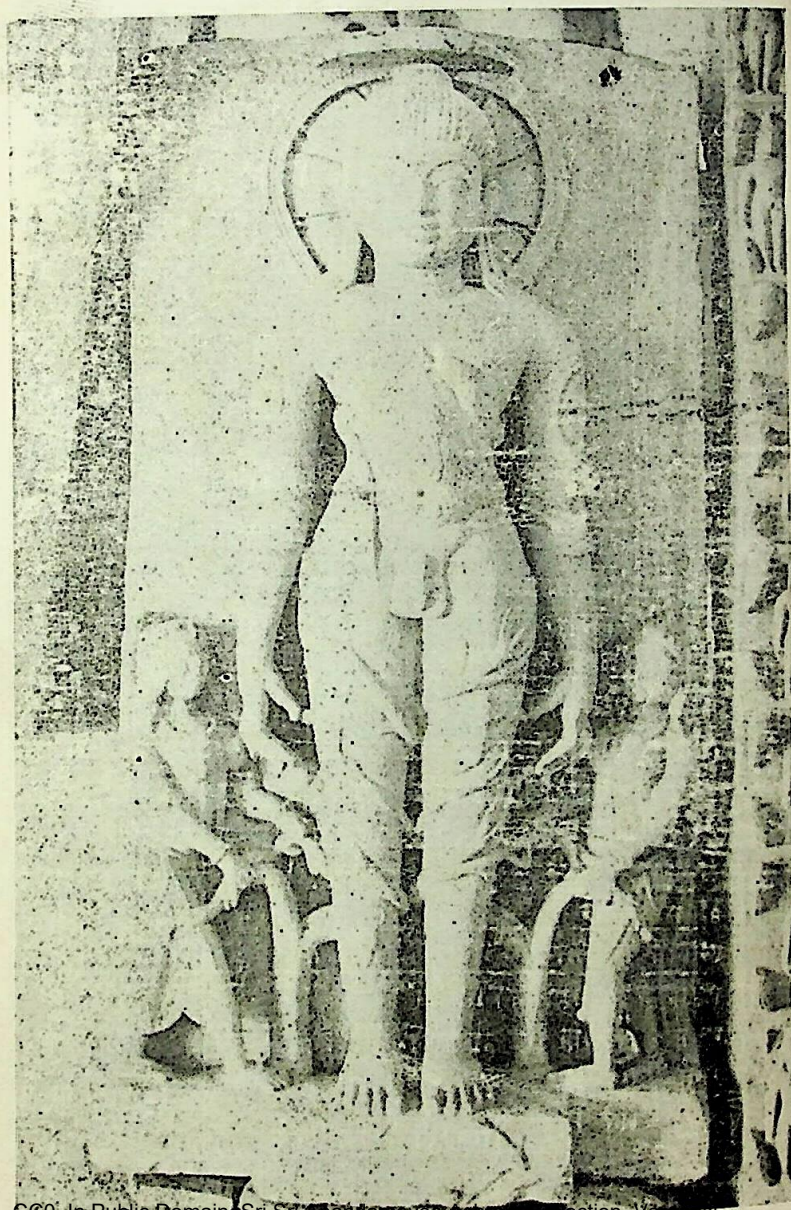
सम्मति

मैंने 'देवगढ़ दर्शन' पुस्तिका का अवलोकन किया। क्षेत्र के इतिहास और वहां स्थित मन्दिरों का ज्ञान कराने के लिए ऐसी परिचय पुस्तिका की अनिवार्य रूप से आवश्यकता थी।

देवगढ़ पूर्व मध्यकाल से ही जैनों का धार्मिक केन्द्र रहा है। भगवान शान्तिनाथ के विशाल आयतन के निर्माण के पूर्व भी यहां अन्य जिनालयों का निर्माण हुआ होगा। इसके प्रमाण में अनेक प्राचीन मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है। लेखक ने यथा स्थान इस ओर संकेत किया है।

मन्दिरों के शिल्प वैभव का विवरण देने के अलावा लेखक ने देवगढ़ में स्थित मानस्तभों और वहाँ प्राप्त उत्कीर्ण लेखों के विषय के सम्बध में भी संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करदी है। साहू जैन संग्रहालय देवगढ़ में संरक्षित पुरातत्वीय सामग्री का भी परिचय प्रस्तुत पुस्तिका में करा दिया गया है।

'गागर में सागर' को चरितार्थ करने वाली इस पुस्तिका के लिये मैं लेखक को बधाई देता हूँ।

बालचन्द जैन
उपसंचालक—
पुरातत्त्व एवं संग्रहालय,
जबलपुर (मध्य-प्रदेश)

दिनांक ३० दिसम्बर १९७४

प्रशंसनीय कृति

'देवगढ़-दर्शन' पुस्तिका के पढ़ने से लगभग वही आनन्द प्राप्त हुआ जो प्रयत्क्ष में श्री देवगढ़ क्षेत्र के दर्शन करने से होता है। इसके लेखक श्री उत्तमचन्द जी राकेश ने जो सफल परिश्रम किया है उसकी मैं हार्दिक सराहना करता हूं। श्री राकेश जी मेरे इतने निकटतम स्नेह-भाजन हैं कि उनको इस कृति की प्रशंसा करना मानो आत्मप्रशंसा हो जायगी। तथापि इतना कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि इन्होंने इस लघु कृति के द्वारा वही श्लाघनीय कार्य किया है जो विशेष शोधक विद्वान इससे पूर्व कर चुके हैं।

मेरी अपनी धारणा है कि श्री देवगढ़ क्षेत्र की पुण्य कला कृतियों की समानता अन्य कोई क्षेत्र नहीं कर सकता। देवगढ़ क्षेत्र ही ऐसा महिमामय क्षेत्र है जहां उपाध्याय परमेष्ठी की तथा पाँचों परमेष्ठियों की सुन्दरतम भव्य प्रतिमायें विद्यमान हैं। तथा एक से एक सुन्दर कलामय मानस्तम्भ और जिन-मंदिर स्थापित हैं। इन सबका गौरवमय परिचय इस पुस्तिका में कराया गया है। साथ ही देवगढ़ के कुछ चित्र भी मुद्रित करके पुस्तक को और अधिक उपयोगी बना दिया गया है। मैं इस सुन्दर कृति की पुनः पुनः सराहना करता हूं, और लेखक को साधुवाद देता हूँ।

—परमेष्ठीदास जैन
(प्रधान सम्पादक 'वीर')

ललितपुर
२५-२-७५

आकर्षक युगल मूर्ति

वीणापाणि सरस्वती की सर्वांग सुन्दर मूर्ति

पुण्यक्षेत्र देवगढ़
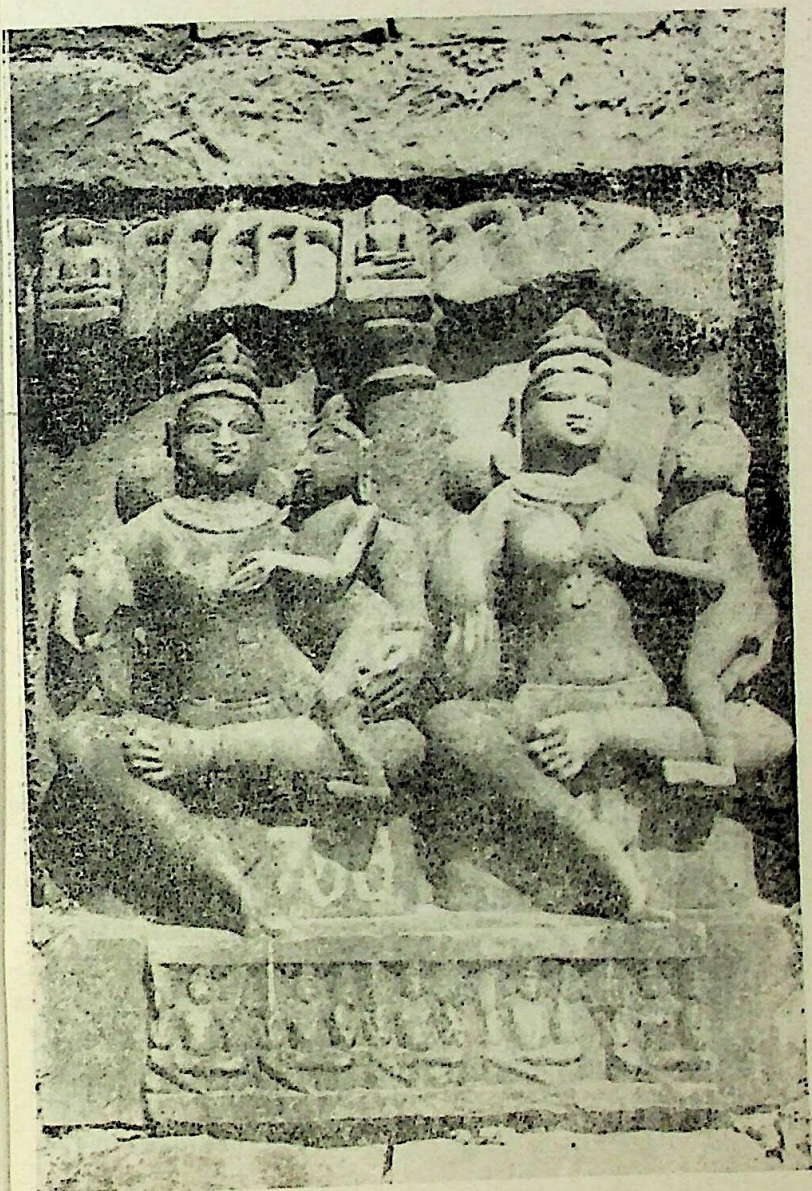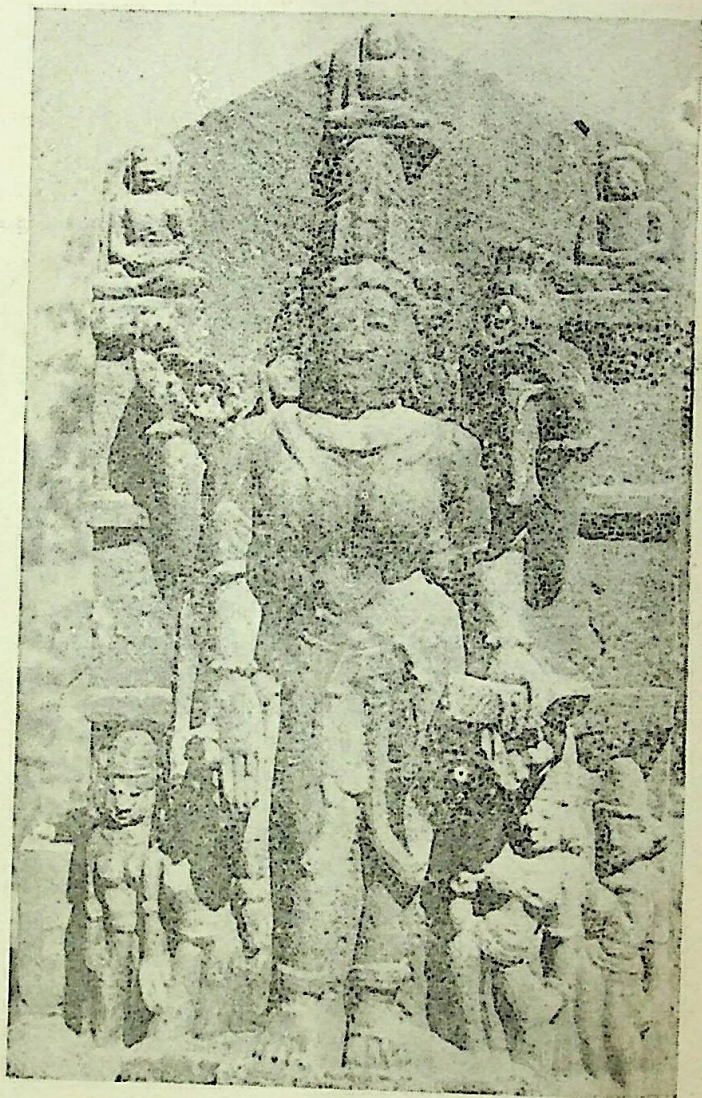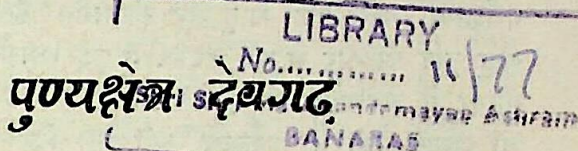
अवस्थिति—

देवगढ़ क्षेत्र उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में बेतवा नदी के किनारे अवस्थित है। यह ललितपुर से दक्षिण-पश्चिम में ३१ किलो मीटर की दूरी पर है। मार्ग पक्का है। ललितपुर से इसका मार्ग इस प्रकार है-ललितपुर से जीरोन १६ कि० मी०। वहाँ से जाखलौन ६ कि० मी०। वहां से सैपुरा ३ कि० मी० सैपुरा से देवगढ़ ६ कि० मी० है। जाखलौन स्टेशन से १३ कि० मी० दूर है। पक्का डामर रोड़ है। यह मध्य रेलवे के दिल्ली-बम्बई मार्ग पर झाँसी-बीना जंकशन के बीच ललितपुर स्टेशन है यहाँ से देवगढ़जी तक जाने के लिये बसें प्राप्त होती हैं।

मार्ग पहाड़ी घाटियों में से होकर जाता है। देवगढ़ एक छोटा सा गाँव है। जिसमें लगभग ३०० की आबादी है। यह बेतवा के मुहाने पर निचाई में बसा हुआ है। विन्ध्य पर्वत की श्रेणियों को काटकर बेतवा नदी ने यहाँ बड़े ही सुन्दर दृश्य उपस्थित किये हैं। देवगढ़ का प्राचीन दुर्ग जिस पर्वत पर है, बेतवा नदी ठीक उसके ४०० फुट नीचे से बहती है। यह पहाड़ उत्तर-दक्षिण में लगभग ढ़ाई मील लम्बा और पूर्व-पश्चिम में लगभग छह फर्लांग चौड़ा है। इस पहाड़ी के नीचे एक दि० जैन

धर्मशाला, और एक साहू जैन संग्रहालय है जिसकी स्थापना साहू ट्रस्ट की ओर से सन १९६९ में हुई। धर्मशाला स्थित इस मन्दिर में उपाध्याय की मूर्ति अत्यन्त कलात्मक एवं मनोज्ञ है जो अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। दिगम्बर जैन मन्दिर धर्मशाला के बराबर में ही वन विभाग का विश्राम-गृह है। ग्राम के उत्तर में प्रसिद्ध दशावतार मन्दिर और शासकीय संग्रहालय है। पूर्व में पहाड़ी पर उसके दक्षिण-पश्चिमी कोने में जैन मन्दिर और अन्य जैन स्मारक है।

पहाड़ी पर चढ़ने के लिये पूर्व की ओर रास्ता बना हुआ है। जब हम इस रास्ते से जाते हैं तो पहिले एक तालाब पड़ता है। पहाड़ पर जाने के लिये पक्का कोलतार रोड़ है, बस, कार ठीक मन्दिर जी के द्वार तक पहुंच जाती हैं। (फिर कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर एक सड़क मिलती है।) चढ़ाई सरल है। धर्मशाला से क्षेत्र ३९७१ फुट की दूरी पर है। इसमें धर्मशाला से पहाड़ी तक १५५० फुट और उसके बाद चढ़ाई प्रारम्भ होने से पुरानी दीवारों में जो दरवाजा है वह ७२१ फुट और इस दरवाजे से क्षेत्र १७०० फुट की दूरी पर है।

दिग्दर्शन—

पहाड़ी के नीचे जो धर्मशाला है, उसके पास ही एक पुराना मन्दिर दिखाई देता है, जिसे गुप्ता मन्दिर कहते हैं। यह गुप्त कालीन स्थापत्य कला के सुन्दरतम नमूनों में से एक है। मंदिर की चहार दीवारी और उसके चारों ओर के अवशेषों को देखने से प्रतीत होता है कि इसके चारों ओर और भी कई मन्दिर रहे

हैं। पहाड़ी की तलहटी में स्थित ये सब भवन, मन्दिर, धर्मशाला, विश्राम गृह आदि अत्यन्त मनोरम स्थान पर अवस्थित हैं, जिनके पीछे की ओर वेतवा नदी बहती हुई दिखाई देती है। और उसकी कल कल ध्वनि कानों में पड़ती है। क्षेत्र पर पहाड़ी की चढ़ाई समाप्त होते ही पहाड़ी की अधित्यका को घेरे हुये एक विशाल प्राचीर मिलती है, जिसके पश्चिम में कुंज द्वार तथा पूर्व में हाथी दरवाजा है। दुर्ग की दीवार स्थान स्थान पर टूटी हुई है। इस प्राचीर के मध्य में एक प्राचीर और है जिसे दूसरा गेट कहते हैं। इसी के मध्य जैन स्मारक है। दूसरे कोट के मध्य में भी एक छोटी प्राचीर है। जिसके अवशेष अब भी मिलते हैं। इस प्राचीर के मध्य में भी एक दीवार बनाई गई है जिसके दोनों ओर खंडित अखंडित मूर्तियाँ पड़ी हैं। सभी मन्दिर पत्थर के हैं। विशाल प्राचीर के दक्षिण पश्चिम में बराह मन्दिर और दक्षिण में वेतवा के किनारे नाहर घाटी और राज घाटी है।

यद्यपि यहाँ छोटे बड़े ४० मन्दिर हैं। किन्तु इनमें ३१ मन्दिरों का कला-सौष्ठव उल्लेखनीय है। मन्दिरों की अपेक्षा यहां की मूर्तियां शिल्प चातुर्य के उत्तम नमूनें हैं। इन मन्दिरों के अतिरिक्त यहां १९ पाषाड़ स्तम्भ हैं और लगभग ५०० अभिलेख हैं।

१—मंदिर नं० १२ अर्ध मण्डप के दक्षिण-पूर्वीय स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख।

२—राजघाटी में वि० सं० ११५४ का अभिलेख।

इतिहास—

गुर्जर प्रतिहार नरेश भोजदेव के शासन कालीन वि० सं० ९१९ के शिलालेख से पता चलता है कि पहिले इस स्थान का नाम लुअच्छगिरि था। १२ वीं शताब्दी में चन्देल वंशीय राजा कीर्ति वर्मा के मंत्री बत्सराज ने इस स्थान पर एक नवीन दुर्ग का निर्माण कराया और अपने स्वामी के नाम पर इसका नाम कीर्ति गिरि रखा। संभवतः १२–१३ वीं शताब्दी में इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया। देवगढ़ के इस नाम करण का क्या कारण है, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्री पूर्णचन्द्र मुखर्जी का अभिमत है कि इस स्थान पर सन् ८५० से ९६९ तक देववंश का शासन रहा। इसलिए इस गढ़ को देवगढ़ कहा जाने लगा किन्तु यह मान्यता निर्दोष नहीं है क्यों कि इस काल में यहां गुर्जर प्रतिहार वंशीय राजाओं का राज्य था।

एक मान्यता यह भी है कि एक स्तम्भ पर संवत् ९१९ का एक अभिलेख है। इसके अनुसार उस स्तम्भ के प्रतिष्ठापक आचार्य कमल देव के शिष्य श्रीदेव बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने यहाँ पर भट्टारक गद्दी की स्थापना की थी। संभवतः उनके नाम पर इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया।

तीसरी मान्यता—जो अधिक बुद्धिगम्य प्रतीत होती है-यह कि यहाँ असंख्य-देव मूर्तियाँ हैं। इसी से इसका नाम देवगढ़ पड़ गया।

देवगढ़ नाम के सम्बन्ध में एक किवदन्ती बहुप्रचलित है। देवपत और खेवपत दो भाई थे। उनके एक पारस मणि थी,

जिसके प्रभाव से वे असंख्य धन के स्वामी बन गये थे। उस धन से उन्होंने देवगढ़ का किला और मंदिर बनवाये। किन्तु तत्कालीन राजा को जब इस पारसमणि का पता चला तो उसने देवगढ़ पर चढ़ाई करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु उसे पारसमणि नहीं प्राप्त हो सकी क्यों कि उसे तो उन धर्मात्मा भाइयों ने वेतवा के गहरे जल में फेंक दिया था।

शायद उसी देवपत के नाम पर इसका नाम देवगढ़ पड़ गया। कुछ कहते हैं कि इस स्थान की रचना देवों ने की थी। इसलिये इसे देवगढ़ कहा जाने लगा। यह स्थान भट्टारकों का गढ़ रहा है और उनके नाम के अन्त में देव शब्द रहा है। अतएव इसका नाम देवगढ़ प्रचलित हो गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देवपत और खेवपत कब हुये अथवा उपर्युक्त किंवदन्ती में कितना तथ्य है, यह तो विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह निश्चित है कि बुन्देलखण्ड में एक समय आया था, जब यहां जैनों का पर्याप्त प्रभाव और वर्चस्व था : इसे हम इस प्रदेश का स्वर्णकाल कह सकते हैं क्यों कि इस समय कला को सभी दिशाओं में खुलकर विकास करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ और कला विदों ने कठिन पाषाणों में सूक्ष्म ललितकला का अंकन करने का सफल प्रयत्न किया।

जैन देवालय

यहाँ पर स्थित मन्दिरों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है: -

मन्दिर नं० १—

ऊपर चलते हुये सीधे हाथ की ओर हमें पहला मन्दिर मिलता है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। यह चार चार स्तम्भों की दो पंक्तियों पर आधारित एक मण्डप के समान है। पुरातत्व विभाग ने स्तम्भों की प्रथम पंक्ति में यहाँ मूर्तियां जड़ दी हैं। इनमें खड्गासन और पद्मासन दोनों ही अवस्थाओं की मूर्तियां हैं। तथा पश्चिम की दीवार पर पंच परमेष्ठियों की मूर्तियां भिन्न भिन्न अवस्था में उकेरी हुई हैं। पंच परमेष्ठी की प्रतिमाओं का दिग्दर्शन अन्यत्र किसी भारतीय जैन तीर्थ क्षेत्र पर नहीं हैं।

मन्दिर नं २—

मंदिर के मध्य केवल दो स्तम्भ खड़े हुए हैं। यह स्तम्भ दीवार के अंग बन गये हैं। इस मन्दिर के पश्चिम में एक द्वार है जो पत्थर की जाली से बन्द है। इसके भीतर पद्मासन और खड़गासन ११ मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मन्दिर में चक्रवर्ती महाराजा, भरत का बाहुबलि भगवान के सम्मुख नमन तथा आदिनाथ भरत एवं बाहुबलि को प्रस्तर में उत्कीर्ण किया है।

मन्दिर नं० ३—

यह उत्तराभिमुख है। यह पूर्व पश्चिम को सात स्तम्भों की चार पंक्तियों पर आधारित है। आगे दालान है। इसमें खुला मण्डप और दालान है। पहिले यह मंदिर दो मंजिला था किन्तु ऊपर की मंजिल गिर जाने से अब यह एक मंजिल का रह गया है। इस मन्दिर के दो भाग हैं। पहिले भाग में ११ अखंडित

मूर्तियां हैं जिनमें पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति अत्यन्त भव्य है। दूसरे भाग में १६ शिला फलक हैं। उनपर मूर्तियां अंकित हैं।

मन्दिर नं० ४—

यह १८ स्तम्भों पर आधारित है। इन स्तम्भों में से २ स्तम्भ मण्डप के अन्तरगत हैं, १२ को दीवार में चिन दिया गया है। ४ मन्दिर के बीच में स्थित हैं। दीवारों में भीतर की ओर अनेक मूर्तियां जड़ी हुई हैं। बाहर स्तम्भ में चारों ओर तीर्थंकरों और उपाध्यायों की पद्मासन मूर्तियाँ अंकित हैं। दायें स्तम्भ में ये विभिन्न आसनों में अंकित हैं। समवसरण वेदी में विराजमान ऋषभनाथ की प्रतिमा दर्शनीय है। एवं शैय्या पर लेटी तीर्थंकर की माता का अंकन अद्भुत है। मंदिर के आगे चारों ओर दुमंजिला मण्डप है जिनमें नीचे और ऊपर के स्तम्भों में चारों ओर मूर्तियां अंकित हैं। बाहरी मण्डप पर अंकित शिला लेखों से ज्ञात होता है कि मन्दिर का जीर्णोद्धार १२ वीं शताब्दी में हुआ होगा।

मन्दिर नं० ५—

अत्यन्त सुन्दर सहस्त्रकूट चैत्यालय है। पूर्व और पश्चिम की ओर दो द्वार हैं। दोनों द्वारों पर सुन्दर अलंकरण है। उत्तर और दक्षिण के द्वार पाषाण के घुमावदार हैं। चैत्यालय में १००८ मूर्तियां बनी हुई हैं। मन्दिर के द्वार पर चमरधारी यक्ष-यक्षिणी और द्वारपाल की मूर्तियां बनी हुई हैं। ऐसा सुन्दर सहस्त्रकूट जिन चैत्यालय अन्यत्र अप्राप्य है।

मन्दिर नं० ६-

यह चार स्तम्भों पर बना हुआ है। इसमें ७ तीर्थंकर मूर्तियां दीवार में जड़ी हुई हैं। इस मंदिर में एक मूर्ति पार्श्वनाथ भगवान की है जिसके सिर पर सर्प फण नहीं है किन्तु दोनों ओर दो विशाल सर्प बने हुये हैं। कहा जाता है कि पुरानीरीति यही है।

मन्दिर नं० ७—

चार स्तम्भों पर आधारित है। यह चारों ओर से खुला हुआ है। उत्तर और दक्षिण में है। इसमें चरणों के दो फलक हैं। जो कि भट्टारकों के हैं। इस पर १३ वीं शताब्दी का शिलालेख है जो शिष्य परम्परा को सूचित करता है तथा जीर्णोद्धार की ओर संकेत करता है।

मन्दिर नं० ८-

यह आठ स्तम्भों पर बना हुआ लम्बाकार मण्डप है। इसमें ३ द्वार हैं। बांयी ओर के द्वार की चौखट के ऊपर पद्मासन तीर्थंकर भगवान अंकित हैं।

मन्दिर नं० ९—

इसके आगे एक चबूतरा है। मन्दिर का प्रवेश अलंकृत है। द्वार पर गंगा यमुना तथा अन्य देवताओं का अंकन है। मन्दिर में वेदी पर शिला फलकों में विभिन्न मूर्तियां अंकित हैं।

सहस्रकूट चैत्यालय
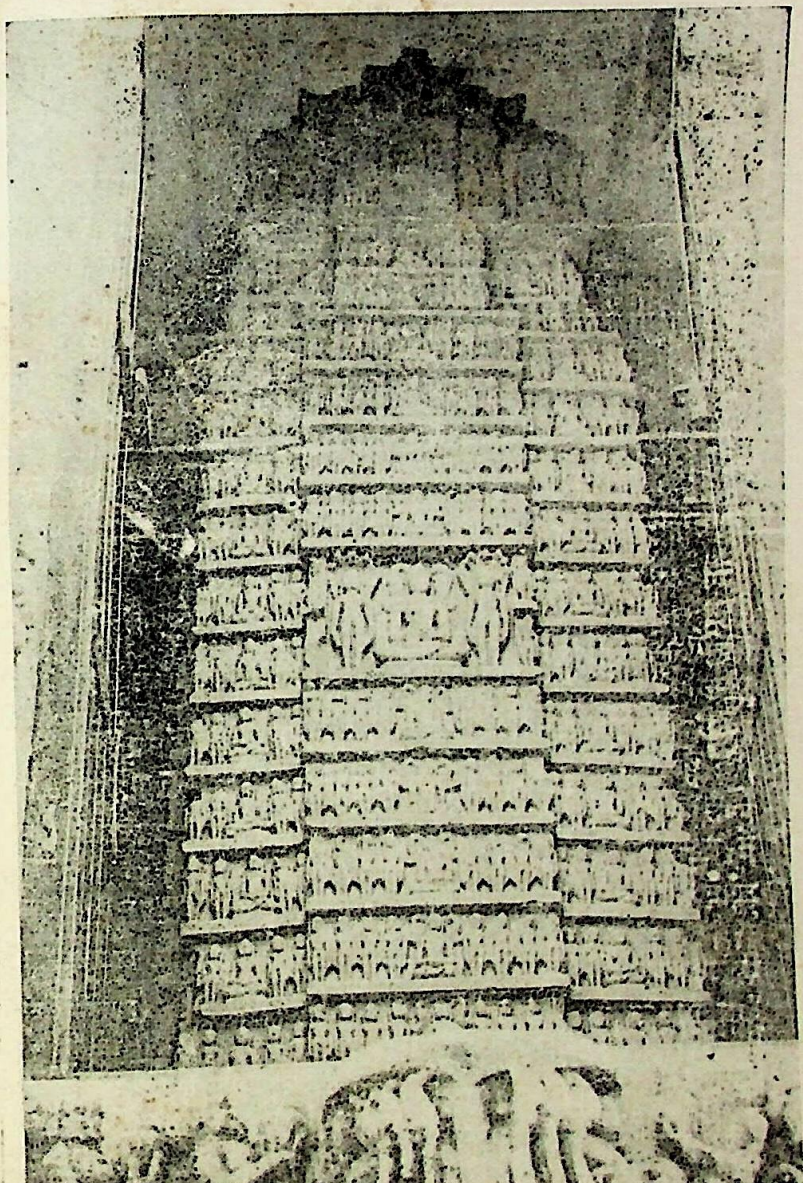
भगवान महावीर की भव्य प्रतिमा

मन्दिर नं० १०–

यह चार स्तम्भों पर आधारित गुमटीनुमा मण्डप के रूप में बना हुआ है। इसके मध्य में एक पंक्ति में तीन चतुष्कोण स्तम्भ हैं। इनमें प्रत्येक की गुमटी खंडित है। स्तम्भ ६ फुट ऊंचे हैं। जीर्णोद्धार के समय दो में दो ताम्र पत्र मिले थे। इन तीनों स्तम्भों के चारों ओर देव कुलिकाओं में तीर्थंकरों, साधु-साधवियों और श्रावकों की मूर्तियां और शिलालेख हैं।

मन्दिर नं० ११ —

यह दो मंजिल का पंचायतन शैली का मंदिर है। आठ स्तम्भों पर इसका मण्डप बना हुआ है। प्रवेश द्वार सुन्दर अलंकृत है। इसमें एक महा मण्डप है। दीवारों में १२ स्तम्भ चिने हुये हैं। ४ स्तम्भ बीच में हैं। गर्भ गृह में ३ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं।

दूसरे खण्ड पर भी द्वार अलंकृत है। उस पर मूर्तियां बनी हुई हैं। यहां २५ फलक हैं, जिसमें १८ पर खडगासन और ७ पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हैं। गर्भगृह में वेदी पर ५ मूर्तियाँ विराजमान हैं। एक श्वेत संगमरमर की है जिसकी स्थापना श्री स० सिं० गनपतलाल भैयालाल जी गुरहा खुरई निवासी द्वारा सन् ३९ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर हुई थी। गर्भगृह दक्षिण की ओर है और ऊपर की मंजिल में भी इसी के ऊपर गर्भगृह है।

इस मन्दिर के सामने मण्डप में भगवान ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली की ११ वीं शताब्दी की मूर्ति है। दक्षिण भारत में

पाई जाने वाली गोमेटेश्वर बाहुबली की मूर्ति से इस मूर्ति में कुछ विशेषता भी है। इस मूर्ति पर बाँयीं ओर कुक्कुट, सर्प और लताओं के अतिरिक्त बिच्छु, छिपकली आदि भी अंकित किये गये हैं। देव युगल लताओं को हटाते हुये दिखाये गये हैं जो दक्षिण की मूर्तियों में देखने को नहीं मिलते बाहुबली स्वामी की ऐसी ही एक मूर्ति चन्देरी में भी मिलती है।

मन्दिर नं० १२–

यह मन्दिर देवगढ़ के सब मन्दिरों में महत्वपूर्ण है और मुख्य मन्दिर माना जाता है। यह पश्चिमाभिमुख है। पहिले अर्ध मण्डप बना हुआ है। फिर मुख्य मण्डप आता है जो ६-६ स्तम्भों की पंक्तिओं पर आधारित है। बरामदे में बांयें ओर १८ शिला फलक हैं। दो पद्मासन और शेष पर खडगासन मूर्तियां हैं। यह बरामदा ४२ फुट ३ इन्च का है।

इस मन्दिर में मूलनायक भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा विराजमान है, जो १२ फुट ऊँची खडगासन है। यह प्रतिमा अत्यन्त चित्ताकर्षक और अतिशय सम्पन्न है। इसके सम्बन्ध में अनुश्रुति है कि पहिले इस प्रतिमा के सिर पर पाषाढ़ का छत्र एक अंगुल के फासले पर था। किन्तु वह अब वह दो हाथ के फासले पर है।

इस मन्दिर की उत्तर दालान में एक आश्चर्यजनक शिलालेख है जिसमें ज्ञान शिला लिखा हुआ है। यह १८ भाषाओं और लिपियों में लिखा गया है। इसे साखानामदी नामक व्यक्ति ने लिखाया था। भगवान ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी ने जिन

१८ लिपियों का अविष्कार किया था, वे सभी लिपियां इसमें लिखी हुई हैं। इसमें मौर्य काल की ब्राह्मी और द्राविड़ी भाषायें भी हैं।

अर्ध मण्डप के स्तम्भ पर गुर्जर प्रतिहार वंशी राजा भोज का संवत् ६१० का शिलालेख है।

इस मन्दिर का प्रवेश द्वार और शिखर बड़े भव्य और कला पूर्ण हैं। गर्भगृह के प्रवेश द्वार के ऊपर के शिला फलकों में भगवान को माता के १६ स्वप्नों एवं नवग्रह का अनूठा अंकन है जो अन्यत्र नहीं पाया जाता।

इसके प्रदक्षिणा-पथ की बहिर्भित्तियों पर जैन शासन देवियों की सुन्दर मूर्तियां बनी हुई हैं। शासन देवियों के ऊपर तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। सभी पर शिलालेख हैं। भीतरी प्रदक्षिणा में ५४ शिला फलक हैं। इनमें से ६ पर पद्मासन और शेष पर खडगासन मूर्तियाँ अंकित हैं। इनमें १५ पर अभिलेख हैं। इनमें जो बड़ी मूर्ति है उसमें एक एक चमर वाहक और एक एक अंबिका की मूर्ति है। इस मन्दिर के बरामदे में २४ शासन देवियों, यक्षि[illegible]ों की मूर्तियां पाषाण में उत्कीर्ण हैं, ऐसी सुन्दर यक्षी-मूर्तियां अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। प्रत्येक मूर्ति के नीचे उसका नाम भी लिखा हुआ है। मन्दिर के बरामदे में एक चार फुट ऊंची मूर्ती है जो चीनी शिल्पकला का प्रतीक है। यहाँ पहिले २० भुजी चक्रेश्वरी और पद्मावती की मूर्तियां थीं जिन्हें नीचे साहू संग्रहालय में पहुँचा दिया गया है। इस मन्दिर की दीवारों का जीर्णोद्धार, ऐसा लगता है कि १ हजार बर्ष पहिले

हुआ हो। बहुत से भारतीय और भारतीयेतर विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार से इस मन्दिर की विशेषताओं का वर्णन किया है। इस मन्दिर का कोट आगरा निवासी सेठ पद्‌मचन्द जी ने बनवाया था। जिसमें ११ से १५ नं० तक के मन्दिर हैं। इसकी दीवार में अनेकों मूर्तियाँ जो इधर उधर पड़ी हुई थीं, लगा दी गई हैं, इससे अधिक हानि नहीं हो सकी।

मन्दिर नं० १३-

यह उत्तराभिमुख है। इसके मण्डप में २० शिला पट्टों पर तीर्थंकर मूर्तियां हैं। गर्भगृह में चार शिलापटों पर ७ देवियों और ८ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। यहाँ जो मूर्तियां हैं उनमें केश कला की विभिन्न शैलियां दर्शनीय हैं। देवगढ़ के मन्दिरों में जो १८ प्रकार की केश-कला के नमूने प्राप्त होते हैं, कहा जाता है कि ये कहीं भी प्राप्त नहीं हैं। यहां से ही इस कला को विदेशों में ले जाया गया है। इस फलक के दोनों और खडगासन मूर्तियां हैं।

मन्दिर नं० १४-

आठ स्तम्भों पर मण्डप है। फिर गर्भगृह में इसमें दो कमरे हैं। दांयें कमरे में ६ शिलापट्टों पर ६ खडगासन मूर्तियां हैं। बाँयें कमरे में ७ शिला फलकों पर मूर्तियां हैं। कुल चार मूर्तियों पर लेख हैं।

मन्दिर नं० १५-

यह पश्चिमामुख है। आठ स्तम्भों पर अर्ध मण्डप लगा हुआ है। यहाँ पांच शिलापट्ट हैं। ४ शिलापट्टों पर तीर्थंकर

मूर्तियां हैं । तथा एक शिलालेख हैं । द्वार की चौखट कला-पूर्ण है।

यहां मण्डप में १६ स्तम्भ हैं । वहाँ १८ शिला फलक हैं । ६ छोटी वेदियों पर हैं । दो पर एक एक पंक्ति का लेख है । चारों दिशाओं में एक एक गर्भगृह है । अर्ध मण्डप पश्चिम में है । इसमें दो वेदियां, उत्तर के गर्भगृह में २ मूर्तियां और मूर्ति खंड है । पूर्वी गर्भगृह में द्वार पर गंगा यमुना और द्वार के भीतर एक पद्मासन प्रतिमा तथा उसके दोनों ओर खडगासन प्रतिमा है । नेमिनाथ भगवान की मूर्ति अत्यन्त भव्य है । इसके दांयो ओर पार्श्वनाथ मूर्ति है । भीतरी गर्भगृह में भगवान नेमिनाथ की मूर्ति बुद्धायतन शैली की है । दक्षिणी गर्भगृह के बाहरी ओर दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं । भीतरी अनेक मूर्ति खंड हैं ।

मन्दिर नं० १६-

चार स्तम्भों पर मण्डप है । एक महा मण्डप है जिसमें ६-६ खम्भों की पंक्तियाँ हैं । महामण्डप में २५ शिलापट्ट हैं । ८ पर पद्मासन, १६-पर खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियां और एक पर अंबिका की मूर्ति है ।

मन्दिर नं० १७-

मण्डप आठ स्तम्भों पर खड़ा है । यहाँ तीन शिलापट्टों पर खडगासन मूर्तियाँ हैं । महा मण्डप में ३१ शिला फलक हैं । २२ पर खडगासन और ९ पर पद्मासन तयाँ हैं ।

मन्दिर नं० १८–

यह दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिर की शैली खजुराहो से मिलती है। चबूतरे पर दो स्तम्भ खड़े हैं। मण्डप आठ खम्भों पर आधारित है। मण्डप में ३ फलकों पर पद्मासन और ४ पर खडगासन मूर्तियां बनी हुई हैं।

महा मण्डप के प्रवेश द्वार पर दो मदनिका अंकित हैं। तथा संगीत सभा का दृश्य बना हुआ है। यह मण्डप १६ खम्भों पर फैला हुआ है। इसमें १९ शिला फलक हैं। गर्भगृह का द्वार नीचे है। द्वारपर गंगा यमुना का अंकन है। गर्भगृह में पांच शिलापट्ट हैं। एक ७ फुट ७ इन्च की विशाल मूर्ति है।

मन्दिर नं० १९–

यह दक्षिणाभिमुख है। मण्डप में ८ स्तम्भ हैं। प्रवेश द्वार पर गंगा–यमुना, नाग–नागिनो, तीर्थंकर मूर्तियां, भरत और बाहुबली की मूर्तियों का सुन्दर अंकन है। महा मण्डप में १६ स्तम्भ हैं। १२ शिला फलक रखे हुये हैं। मन्दिर के बरामदे में चार भुजी खड़ी हुई सरस्वती, षोडसभुजी गरुड़ासीना चक्रेश्वरी, बृषभासीना अष्टभुजी ज्वाला मालिनी और पद्मावती की मूर्तियां बड़ी मनोज हैं। इनमें से एक पर विक्रम ११२० खुदा हुआ है।

मन्दिर नं० २०–

यह दक्षिणाभिमुख है। प्रवेश द्वार पर गंगा यमुना और तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन है। मण्डप में २४ स्तम्भ हैं तथा २७ शिला पट्ट रक्खे हैं। इनमें १४ खडगासन और १३ पर

पद्मासन प्रतिमायें अंकित हैं इनमें गर्भगृह में ५ शिला पट्ट है जिनमें ३ पर पद्मासन और २ पर खडगासन मूर्तियां हैं। भगवान महावीर की पद्मासन मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। एवं मनोज्ञ है इतनी सुन्दर कलात्मक प्रतिमा अन्यत्र नहीं।

मन्दिर नं० २१—

मण्डप ८ स्तम्भों पर आधारित है। यहां एक स्तम्भ खंड रक्खा हुआ है जिस पर ६ पंक्तियों का एक लेख है। मण्डप में एक कायोत्सर्ग मूर्ति रखी है। यह खंडित है।

पश्चिमी कमरे में शिला फलक हैं। ३ पर अभिलेख हैं। एक मूर्ति का सिर कटा हुआ है।

पूर्वी कक्ष में भी ८ शिलाफलक हैं, इसकी मूर्तियां बड़ी सुन्दर हैं किन्तु ४ मूर्तियों के सिर चोरों द्वार काट लिए गये हैं।

सन् १९५६ में मूर्ति चोरों ने इस मन्दिर को बहुत क्षति पहुँचाई थी। अनेकों मूर्तियों के सिर काट ले गये। इन्द्र की पूरी मूर्ति को ही छेनी से काट दिया है। (मोहनजोदडो फर्म के मालिक दिल्ली के शिवचन्द बात्रा आदि पर मुकद्दमें चले और सुप्रीम कोर्ट से भी उनको एक एक बर्ष का कठोर करावास की सजा बहाल रही और उन्हें कारावास भुगतना पड़ा)।

मन्दिर नं० २२—

यह दक्षिणाभिमुख है। मण्डप दो स्तम्भों और प्रवेश द्वार पर स्थित है। द्वार के ऊपर एक पंक्ति का लेख है। बाहरी दीवारों पर शिखराकृतियां बनी हुई हैं।

मन्दिर नं० २३—

प्रवेश द्वार सुन्दर है। गर्भगृह की बेदी सूनी है। यहां ५ शिला पट्ट हैं ३ पर कायोत्सर्ग, १ पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं तथा १ पर अम्बिका की मूर्ति है।

मन्दिर नं० २४-

मण्डप के आगे द्वार है जिस पर गंगा, यमुना और तीर्थंकर मूर्तियों का भव्य अंकन है। द्वार के सिरदल पर १ पंक्ति का लेख है। गर्भगृह में ५ शिलापट्ट है ३ पर पद्मासन १ पर खडगासन मूर्तियाँ हैं तथा १ पर धरगेन्द्र पदमावती बने हुए हैं।

मन्दिर नं० २५—

यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप चार स्तम्भों पर आधारित है। प्रवेश द्वार के ऊपर खडगासन पार्श्वनाथ का अंकन है। इसके बगल में एक पंक्ति का लेख है गर्भगृह में ५ शिला फलक है, जिनमें २ पर पद्मासन और ३ पर खडगासन प्रतिमायें हैं।

मन्दिर नं० २६—

यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप ८ स्तम्भों पर खड़ा है। मण्डप में ५ शिला पट्ट हैं, १ पर केवल मामन्डल है। प्रवेश द्वार के सिरदल पर पाँच फणावली वाली सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है। गर्भगृह में कुल १२ स्तम्भ हैं। यहाँ १३ शिलाफलक है, जिनमें ७ पर अभिलेख हैं सन् १९५९ में मूर्ति भंजकों ने यहाँ की कुछ तीर्थंकर मूर्तियां और १ धरणेन्द्र पद्मावती के सिर काटे थे।

मन्दिर नं० १२ का कलामय शिखर

कलात्मक मानस्तंभ
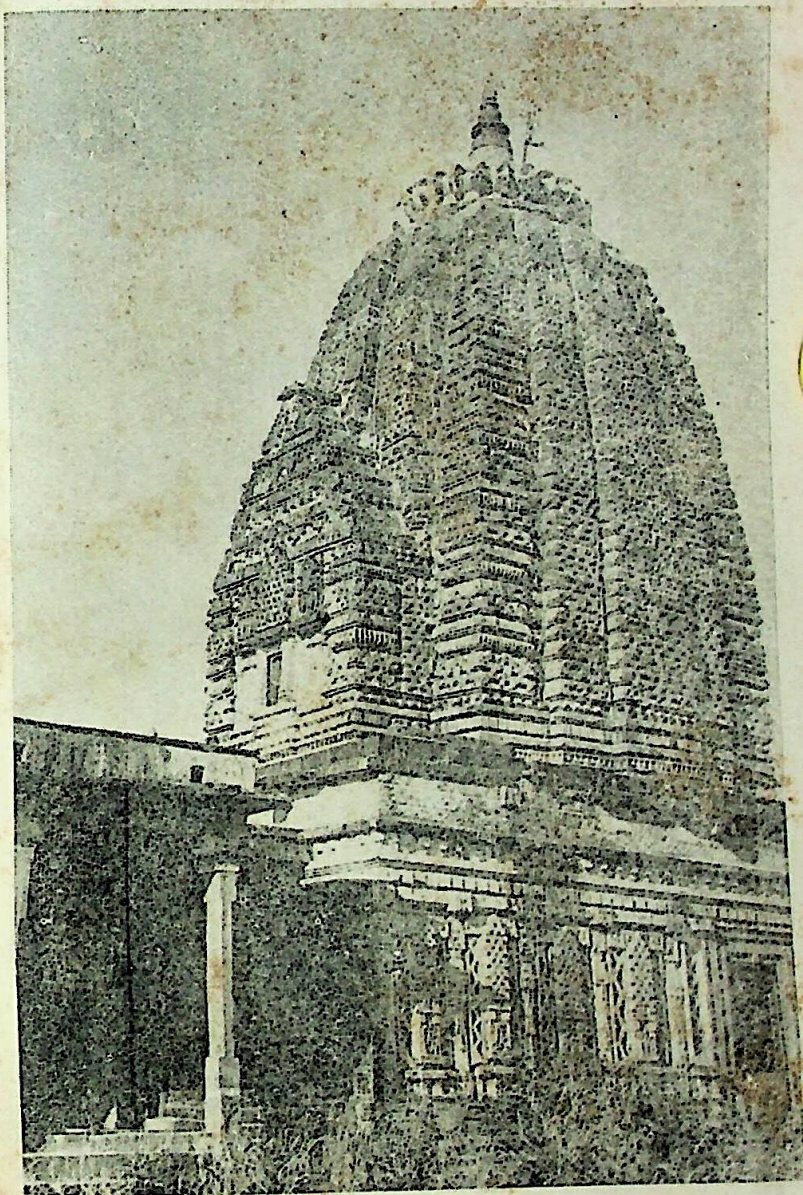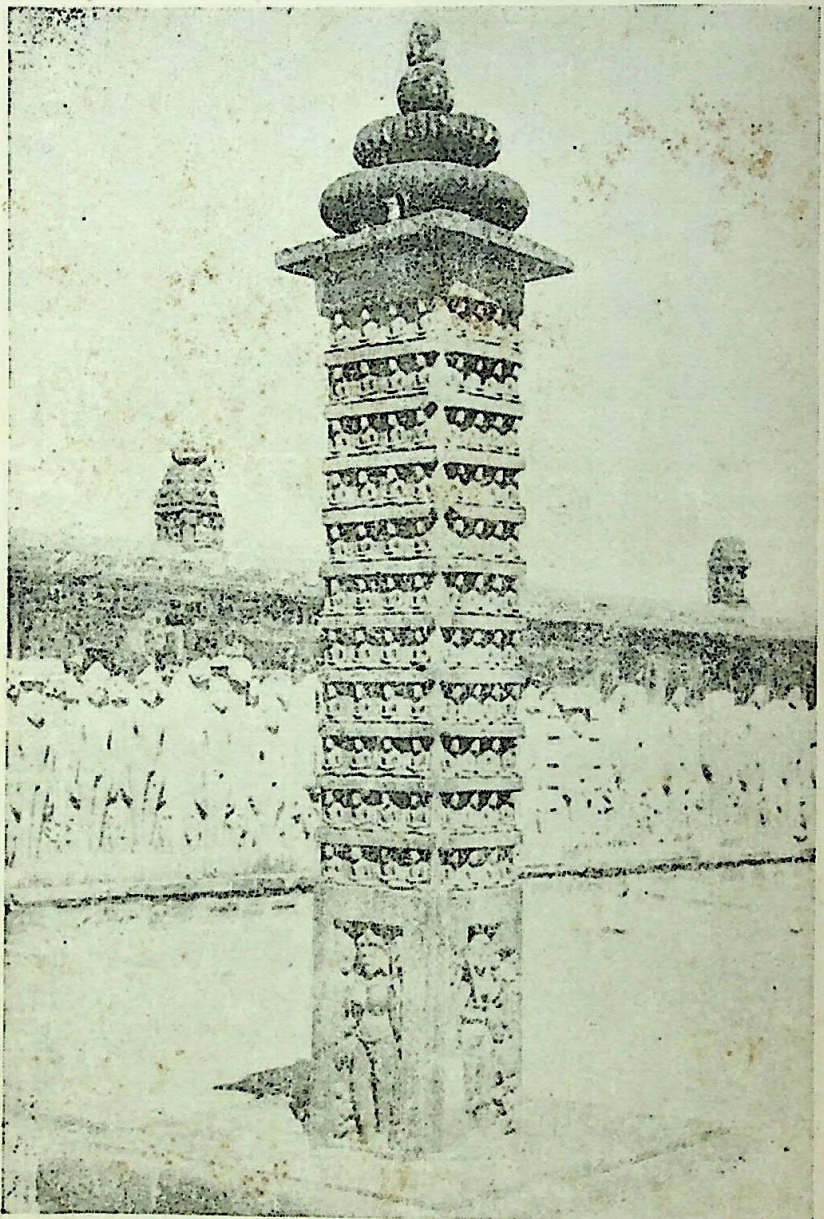
मन्दिर नं० २७—

यह पूर्वाभिमुख है। मण्डप दीवारों पर आधारित है। प्रवेश द्वार के सिरदल पर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रा में आसीन है। उनके इधर उधर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ है। दाईं ओर १ पंक्ति का अभिलेख है। गर्भगृह के द्वार के ऊपर ऋषभदेव अंकित हैं। गर्भगृह में दो शिलापट्ट हैं, एक पर चौबीसी बनी है।

मन्दिर नं० २८—

यह दक्षिणाभिमुख है। गर्भगृह दो सीढ़ी उतरकर नीचाई पर है। इसमें ७ शिलापट्ट हैं, जिनमें २ पर पद्मासन और ५ पर खड्गासन मूर्तियां हैं। ३ पर लेख हैं। मन्दिर पर शिखर है। प्रवेश द्वार पर भव्य शिखर हैं। जीर्णोद्धार के समय यथावत मूर्ति लगा दी गई है।

मन्दिर नं. २९—

यह पश्चिमाभिमुख है। सिरदल पर तीन तीर्थंकर मूर्तियां हैं। इसकी वेदी पर ६ शिलापट्ट हैं। इनमें से एक पर सं० १२०२ का लेख है। एक शिलाफलक पर चौबीसी है। और एक पर केवल भामण्डल और सिंहासन बना हुआ है।

मन्दिर नं० ३०—

यह पश्चिमाभिमुख है। मण्डप ८ स्तम्भों पर आधारित है। प्रवेशद्वार के ऊपर तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह में ३ वेदियाँ बनी हुई हैं। इन पर शिलापट्ट रक्खे हुए हैं। ३ पर लेख हैं।

एक सिंहासन पर लेख खुदा हुआ है। इस पर कोई मूर्ति नहीं है।

मन्दिर नं० ३१—

यह दक्षिणाभिमुख है। प्रवेश द्वार के दोनों ओर गंगा यमुना का अंकन है। सिरदल पर वीणा-पुस्तक धारिणी सरस्वती और शान्तिनाथ की मूर्ति बनी हुई है। वांयीं ओर कोई देवी मूर्ति थी जो खण्डित कर दी गई है। गर्भगृह की वेदी में एक शिलाफलक पर नेमिनाथ की मूर्ति है।

लघु मन्दिर।

उपर्युक्त मन्दिरों के अतिरिक्त कुछ लघु मन्दिर भी हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है:—

मन्दिर नं० १—

मन्दिर नं० १२ के दक्षिण में है। मण्डप चार स्तम्भों पर खड़ा है। दीवार के बाहरी भाग पर चार शिखरयुक्त देव कुलिकायें बनी हुई हैं। जिनमें एक एक तीर्थंकर प्रतिमा है। गर्भगृह में ५ शिलापट्ट हैं, जिनमें २ पर पद्मासन और ३ पर खड्गासन मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर नं० २—

यह मन्दिर नं० १२ के दक्षिण में बीच में है। इसमें मण्डप नहीं है। पश्चिमी भित्ति पर पाँच पूर्व और दक्षिण की

दीवारों पर चार अलंकृत स्तम्भ कृतियां हैं। गर्भगृह में ३ शिला पट्ट हैं। १ पर खड्गासन और २ पर पद्मासन मूर्तियां हैं।

मन्दिर नं० ३-

मन्दिर नं० १२ के दक्षिण में पश्चिम की ओर स्थित है। यह मन्दिर मण्डपाकार है और तीन ओर से खुला हुआ है। इसमें एक मूर्ति सवा सात फुट ऊंची है। दोनों ओर चमर वाहक हैं किन्तु बांयीं ओर का चमरवाहक नहीं है, कट गया है।

मन्दिर नं० ४ ·

यह मन्दिर नं० १३ के सामने है। प्रवेश द्वार पर गंगा यमुना और सिरदल पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। पश्चमी भित्ति पर एक शिखरयुक्त मण्डपाकृति बनी है, जिसमें खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा अंकित है। इसी प्रकार पूर्वी दीवार पर भी तीर्थंकर-मति बनी है। गर्भगृह में वेदी पर दो शिलापट्ट और खड्गासन पार्श्वनाथ मूर्ति है। शिलापट्टों में पद्मासन मूर्तियां हैं।

मन्दिर नं० ५—

यह मन्दिर नं० १५ के पीछे है। प्रवेश द्वार के सिर दल के मध्य में एक खड़गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इसकी पूर्वी दीवाल के उत्तर की ओर नव निर्मित चहार दीवार मिलती है। इसके गर्भगृह में तीन ओर वेदियां बनी हुई हैं। उन पर ६ शिलापट्ट हैं जिनमें से ३ पर खडगासन और ३ पर पद्मासन प्रतिमायें हैं।

मन्दिर नं० ६—

इसके सिरदल के मध्य पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इसकी दीवालों पर स्तम्भों के आकार बने हुये हैं। स्तम्भों पर सुन्दर बेल बूटें हैं। इसकी छत एक ही पत्थर की है। इसके गर्भगृह में तीन ओर नवनिर्मित वेदियां हैं, जिन पर ५ शिलापट्ट हैं। १ पद्मासन और शेष खड्गासन प्रतिमायें हैं।

यह मन्दिर नं० १५ के पीछे छोटी मढ़िया कहलाती है।

मन्दिर नं० ७—

यह मन्दिर नं० १६ के सामने स्थित है। बहिर्भित्तियों पर चार चार स्तम्भाकृतियाँ बनी हैं। गर्भगृह में ४ शिलाफलकों में १ पर पद्मासन और शेष पर खडगासन प्रतिमायें बनी हुई हैं।

मन्दिर नं० ८—

यह मन्दिर नं० २६ के उत्तर में है। प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार करके यह बनाया गया है। प्रवेश द्वार के सिरदल में एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्ति है। गर्भगृह में चार शिलाफलक हैं जिन पर ५ प्रतिमायें बनी हुई हैं। ४ खड्गासन हैं और १ पद्मासन है। एक मूर्ति पर लेख है।

मन्दिर नं० ९—

मन्दिर नं० २७ के दक्षिण में है। पुराने मन्दिर के स्थान पर यह बनाया गया है इसमें दो कक्ष हैं। बायें कक्ष में २ शिला खण्ड है, जिनपर २ पद्मासन और २ खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दायें कक्ष में एक शिलापट्ट पर खड्गासन प्रतिमा है और २ छोटे अभिलेख अंकित हैं।

मानस्तम्भ

यहां छोटे बड़े १९ मान-स्तम्भ हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है—

१– यह मन्दिर नं० १ के आगे बना हुआ है। इसके ऊपर ४ देव कुलिकायें बनी हुई हैं, उनमें ४ खडगासन प्रतिमायें अंकित हैं दक्षिणी देव कुलिका के नीचे अर्धचन्द्र का चिन्ह बना हुआ हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति चन्द्रप्रभु भगवान की है। इस स्तम्भ के पूर्वी भाग में १७ इन्च लम्बी ९ पंक्तियों का लेख है। इसके अनुसार सं० १४६३ में महेन्द्रचन्द्र नामक एक श्रावक ने मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। स्तम्भ की ऊँचाई ५ फुट ३ इन्च है।

२—मन्दिर नं० १ के पीछे उत्तर में स्थित है। इस स्तम्भ के नीचे के भाग में चार देवकुलिकाओं में अम्बिका, चक्रेश्वरी धरणेन्द्र और पद्मावती बने हुए हैं। स्तम्भ के मध्य भाग में कीर्तिमुखों के चारों ओर घण्टियां लटक रही हैं। इसके ऊपर ४ देवकुलिका में उपाध्याय परमेष्ठी की मूर्ति है। उपाध्याय उपदेश मुद्रा में हैं। उनके निकट एक चौकी है इनके पीछे कमंडल भी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इनके बांयीं ओर एक हाथ जोड़े हुये भक्त खड़ा है। पश्चिमी देवकुलिका में पंचफणावलीयुक्त सुपार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति है। शेष स्तम्भ की ऊंचाई सवा दस फुट है।

३—मन्दिर नं० १ के पीछे बना हुआ यह मानस्तम्भ है। नीचे के भाग में चार देवकुलिकायें बनी हुई हैं। उत्तर की

देवकुलिका में सिंहासनारूढ़ा अम्बिका अपने दोनों बालकों और आम्रगुच्छक सहित विराजमान है। पूर्व में गरुड़ पर बैठी हुई चक्रेश्वरी है। दक्षिण में नाग और पश्चिम में नागिनी बने हुए हैं। इनके ऊपर कीर्तिमुखों से कलापूर्ण घण्टियां लटक रही हैं। कीर्तिमुखों के ऊपर देवकुलिकायें बनी हुई हैं। पूर्व में पीछी कमण्डलु सहित ६ मुनि उपदेश मुद्रा में बने हुए हैं। दक्षिण में पीछी कमण्डलु सहित, विनय मुद्रा में ६ आर्जिकायें, पश्चिम में ३ साधु, ३ आर्जिकायें क्रम से पीछी सहित और उत्तर की ओर बांयें श्रावक श्राविका और साधु हाथ जोड़े हुए हैं। इनके मध्य में आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में आसीन हैं।

यहां तक स्तम्भ चतुष्कोण है। इसके पश्चात् पाषाण गोल हो गया है। फिर कीचकों के ऊपर चार देवकुलिकाओं में चार पद्मासन-मूर्तियाँ हैं। पूर्व और दक्षिण में हरिण चिन्ह वाली शान्तिनाथ की प्रतिमा है। पश्चिम में फणयुक्त पार्श्वनाथ हैं। और उत्तर की देवकुलिका में उपदेश मुद्रा में आचार्य परमेष्ठी विराजमान हैं। उनके समक्ष श्रावक बैठे हुए हैं। इनके ऊपर और भी देवकुलिकायें बनी हुई हैं। यह मानस्तम्भ अत्यन्त भव्य है। इसकी ऊंचाई चौकी सहित १६ फुट है। (इसे उठाकर नीचे धर्मशाला में स्थापित करा दिया गया है।)

४—मन्दिर नं० १ के पीछे है। चौकी समेत इसकी ऊंचाई १० फीट १० इन्च है। अधोभाग में ४ देवकुलिकायें बनी हैं। इनमें क्रमशः नाग, नागी, अम्बिका और महाकाली हैं। मध्य भाग में कीर्तिमुखों से घंटिकायें लटक रही हैं। इनके ऊपर ४

देवकुलिकायें बनी हुई हैं। दक्षिण देवकुलिका में उपाध्याय और शेष पद्मासन तीर्थङ्कर मूर्तियां हैं।

५--यह मन्दिर नं० १, २ और ३ के बीच में बना हुआ है। इसमें अधोभाग और मध्य भाग में कीर्तिमुख बने हुए हैं। मध्य के कीर्तिमुखों से साँकलदार घण्टियाँ लटकी हैं। ऊपरी भाग में ४ देवकुलिकायें बनी हुई हैं। उत्तर में आचार्य परमेष्ठी उपदेश में आसीन हैं। एक हाथ में ग्रन्थ है। पीछी कमण्डलु पास में रक्खे हुए हैं। पूर्व में सप्त फणावली युक्त पार्श्वनाथ, दक्षिण में ऋषभदेव और पश्चिम में अजितनाथ पद्मासन में विराजमान हैं सबके नीचे एक एक पंक्ति का लेख है। इस स्तम्भ पर सं० ११०८ अंकित है।

६--मन्दिर नं० ५ के पश्चिम में बांयीं ओर है। यह स्तम्भ केवल ४ फुट का है। इसमें चार देवकुलिकायें बनी हुई हैं। दक्षिण की देवकुलिका में पीछी कमण्डलु लिए हुए अर्जिका हैं। शेष ३ पर पीछी कमण्डलु लिए हुए मुनि कायोत्सर्ग में लीन है।

७--यह मन्दिर नं० ६, ७, ८ के मध्य में है। इसमें पूर्व और पश्चिम में देवकुलिकायें बनी हुई हैं। जिसमें गले में मालाधारण किये हुए कायोत्सर्ग मुद्रा में भट्टारक की एक एक मूर्ति है। पूर्व में एक पंक्ति का तथा पश्चिम में तीन लाइन का लेख है। यह चौकी सहित पौने पांच फुट ऊंचा है।

८--मन्दिर नं० १२ के सामने चबूतरे पर है। अधोभाग में चार देवकुलिकायें हैं। उत्तर में सिंहवाहनी, पूर्व में मयूरवाहिनी

दक्षिण में नरारूढ़ा और पश्चिम में वृषभारूढ़ा चतुर्भुजी देवी मूर्तियां हैं। संभवतः ये महावीर तीर्थंकर की सिद्धायिका, शान्तिनाथ की महामानसी कंदर्पा, सुपार्श्वनाथ की काली, मानवी नामक देवियां होंगी। किन्तु दिगम्बर शास्त्रों में किसी नरारूढ़ा देवी का वर्णन देखने में नहीं आया।

मध्य भाग में कीर्तिमुखों से लम्बी तीन श्रृंखलाओं में बंधी हुई घंटिकायें लटकती हुई अंकित हैं। इससे ऊपर भाग में चार देवकुलिकायें बनी हुई हैं जिनमें एक एक खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं। यह १२ फुट ८ इन्च ऊंचा है।

९—यह मन्दिर नं० १२ के सामने हैं। यह ८ फुट ७ इन्च ऊंचा है। इसके ऊपर कोई अंकन या अलंकरण नहीं है।

१०—यह मन्दिर नं० १२ के महामण्डप में रक्खा हुआ है। इस पर दो अभिलेख हैं एक दो पंक्ति का और दूसरा दस पंक्तियों का। इसके ऊपर देवकुलिका में तीर्थंकर मूर्ति बनी हुई है।

यह मानस्तम्भ मन्दिर नं० ११ के सामने और मन्दिर नं० १२ के दक्षिण में है। यह तीन कटनीदार चौकी पर स्थित है। और कुल आठ फुट पांच इन्च ऊंचा है।

१-श्री ठाकुर फेरू विरचित वास्तुसार प्रकरण ग्रन्थ के अनुसार पद्म प्रभु भगवान की यक्षी अच्युता श्यामा नरवाहिनी मानी गयी है।

इसके अधोभाग में चार देवकुलिकायें बनी हुई हैं। इनमें उत्तर की ओर धरणेन्द्र-पद्मावती, पूर्व में गरुड़वाहिनी दसमुखी चक्रेश्वरी, दक्षिण में द्वादशभुजी मयूरवाहिनी महामानवी, पश्चिम में वृषभारूढ़ा अष्टभुजी कालीदेवी उत्कीर्ण हैं।

स्तम्भ पर फूल पत्तियां, श्रंखलायुक्त घन्टियों का अंकन बहुत सुन्दर है। ऊपर के भाग में चारों दिशाओं में चार कोष्ठक हैं। उत्तर की ओर आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में पद्मासन से विराजमान हैं। उनके दोनों ओर पीछीधारी एक साधु और अंजलीबद्ध दो दो भक्त बैठे हैं। पूर्व की ओर संवत् ११११ का अभिलेख है। इसके ऊपर एक उपदेश देती हुई अर्जिका अंकित है। उसके दोनों ओर वस्त्राभूषण धारिणी अंजलिबद्ध तीन तीन श्राविकायें बैठी हुई हैं।

दक्षिण में उपदेशमुद्रा में अर्जिका अंकित हैं। उनके पीछी कमण्डलु दोनों दिखाई पड़ते हैं। उनके दोनों ओर एक एक आर्जिका और दो दो श्राविकायें विनय-मुद्रा में आसीन हैं। पश्चिम में मध्य में उपाध्याय परमेष्ठी उपदेशमुद्रा में बैठे हैं। उनके दोनों ओर एक एक साधु और दो दो श्रावक बैठे हैं।

इनके भी ऊपर चार देवकुलिकायें बनीं हुई हैं। इनके शिखरों के ऊपर लघु आमलक और कलश बने हुये हैं। इन कुलिकाओं में दक्षिण में सप्त फणाच्छादित पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग में स्थित हैं। शेष तीन ओर तीर्थंकर-प्रतिमायें खड्गासन में अंकित हैं।

१२--यह मन्दिर नं १२ के दक्षिण में स्थित है। इसके चारों ओर ११-११ पंक्तियों में चार चार तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। सभी पद्मासन में हैं। यह स्तम्भ चौकी समेत ११ फुट का है।

१३-- मन्दिर नं. १४ के सामने दाईं ओर है। पश्चिम की देवकलिका में अम्बिका है तथा शेष में यक्षी हैं। इनके ऊपर चारों ओर ११-११ पंक्तियों में ४-४ तीर्थंकर प्रतिमायें अंकित हैं। देवकुलिकाओं के ऊपर कलश भी बने हुये हैं। यह ११ फुट ऊंचा है।

१४--मन्दिर नं १५ के सामने स्थित है। इस स्तम्भ की बनावट बहुत सुन्दर है। अधोभाग में १८ मेखलायें बनी हुई हैं। कीर्तिमुखों के ऊपर लताओं और पत्तों का सुन्दर अंकन किया गया है। ऊपरी भाग में खड्गासन सर्वतो भद्रिका प्रतिमायें हैं। इसकी ऊंचाई ६ फुट ९ इन्च है।

१५-१६--ये दोनों मन्दिर नं० १८ के सामने हैं। अधोभाग में मंगलघट बने हुये हैं। जिनके ऊपर पुष्प-पत्रों का अलंकरण है। मध्य भाग में जंजीरों में घन्टियाँ लटकी हुई हैं। दाँयीं ओर के स्तम्भ पर संवत् ११२१ का लेख है। शृंखलाओं के ऊपर कीर्तिमुख है। ऊपरी भाग में चारों ओर कोष्ठक बने हुये हैं। उत्तर की ओर ग्रन्थ हाथ में लिये आचार्य परमेष्ठी हैं। पादपीठ में पीछी कमण्डलु है। इनके नीचे की ओर आर्यिकायें हैं। शेष तीन ओर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं।

बायें स्तम्भ पर आचार्य परमेष्ठी के सामने साधु और आर्यिकायें उपदेश श्रवण करते हुये दिखाये गये हैं। यह १२ फुट १० इन्च ऊंचे हैं।

१७ –यह मन्दिर नं० २० के सामने है। इसमें एक सुसज्जित हर्म्य का दृश्य अंकित है। कीर्तिमुख पुष्पमालाओं का भव्य अंकन किया गया है। मध्य शिखराकार देवकुलिकायें हैं जिनमें पद्मासन सर्वतोभद्रिका प्रतिमायें हैं।

केवल यही मानस्तम्भ गोलाकार है। इसकी सूक्ष्म कला दर्शनीय है। यह चौकी समेत ११ फुट ११ इन्च ऊंचा है।

१८—यह मन्दिर नं० २६-२७ के मध्य में है। इसके अधोभाग में देवकुलिकायें बनी हुई हैं। जिनमें धरणेन्द्र पद्मावती अंबिका आदि देवियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके ऊपर पत्रावली, लतायें हैं। उनके मध्य में कीर्तिमुखों से घन्टिकायें लटक रही हैं। उनके ऊपर देवकुलिकायें हैं। जिनमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। यह पौने पाँच फुट ऊंचा है।

१९—यह मन्दिर नं० २६, २८, ३० के मध्य में है। अधोभाग में देवकुलिकायें हैं। इनमें धरणेन्द्र, पद्मावती, अम्बिका आदि यक्ष-यक्षी हैं। इनके बाद ऊपर चारों ओर चौबीसी बनी हुई है। पांच पाँच पंक्तियों में ४-४ पद्मासन मूर्तियाँ हैं तथा ६ वीं पंक्ति में खडगासन मूर्तियां हैं। यह पांच फुट आठ इन्च ऊंचा है। क्षेत्र पर बहुत सी खण्डित मूर्तियां इधर उधर बिखरी पड़ी हैं।

कुंज द्वार—

यह द्वार पर्वत के पश्चिम की ओर है और प्राचीन दुर्ग का मुख्य द्वार है। यह १९ फुट ऊंचा है और १० फुट चौड़ा है। यह जीर्ण दशा में है। इस द्वार के दोनों ओर १५ फुट चौड़ी प्राचीन प्राचीर है। इसका तोरण भव्य और कला-पूर्ण है।

इस द्वार के दक्षिण में लगभग १०० गज की दूरी पर मुख्य सड़क है और मन्दिरों के बीच एक पक्का मार्ग बन गया है।

हाथी दरवाजा —

दुर्ग के प्रथम प्राचीर में पूर्व की ओर यह दरवाजा है। हाथियों का आवागमन इसी दरवाजे से होता था। इसके लिये इस दरवाजे का नाम हाथी दरवाजा हो गया। द्वार के भीतर बांयी ओर एक शिलाफलक ८ फुट की ऊंचाई पर लगा हुआ है। इसमें उपाध्याय परमेष्ठी अंकित हैं। हाथ में ग्रन्थ लिये हुये हैं, किन्तु वह कुछ खंडित हो गया है। इनकी दोनों ओर अंजलीबद्ध साधु खड़े हुये हैं। उनके हाथों में पीछी हैं। उपाध्याय के ऊपर पद्मासन में एक तथा उसके दोनों ओर खड्गासन में एक एक तीर्थंकर प्रतिमा है। इसके बगल में एक देवकुलिका बनी हुई है। इसमें एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। किन्तु इसका मुख खंडित है। इस प्रतिमा के कन्धों पर जटायें बिखरी हुई हैं। श्रीवत्स और अष्ट प्रातिहार्य का अंकन बहुत भव्य है। इसके दोनों ओर एक एक पद्मासन तीर्थंकर-मूर्ति है।

द्वार के भीतर दांयीं ओर ८ फुट ८ इन्च की ऊंचाई पर एक शिला-पट्ट है। एक देवकुलिका में सप्तफणयुक्त पार्श्वनाथ खड्गासन में विराजमान हैं। पादपीठ के दोनों ओर दो दो मानवाकृतियाँ हैं, जो खंडित हैं। उनके ऊपर पद्मासन में एक तीर्थंकर-मूर्ति है। जिसके दोनों ओर चमरवाहक हैं। शिलापट्ट के भीतर की ओर देवकुलिका में बैठे हुये यक्ष युगल अंकित हैं। एक तीर्थंकर-मूर्ति कमलासन पर विराजमान है। यह पद्मासन में है। सिर के ऊपर दो छत्र हैं।

घाटियाँ—

पर्वत के दक्षिण की ओर दो घाटियां हैं। इनमें से नाहर घाटी पहाड़ को ऊंची दीवार को काटकर बनायी गई है। इस घाटी में गुफायें और शिलाओं में अनेक देवकुलिकायें बनी हुई हैं। यहाँ एक गुफा में सं० ६०९ का एक शिलालेख मिला है। बताया जाता है कि यह गुप्तकाल का प्रतीत होता है।

यहाँ बेतवा के तट पर उत्खनन में प्रागैतिहासिक काल के अस्थि पंजर प्राप्त हुये हैं। राजघाटी की गुफाओं में प्रागैतिहासिक काल के चित्र प्राप्त हुये हैं। एक गुफा में एक शिलालेख सं० ११४० का है। इसको चन्देल वंशी राजा कीर्तिवर्मा के मन्त्री वत्सराज ने उत्कीर्ण कराया था। और उसने अपने राजा के नाम पर इस स्थान का नाम कीर्तिगिरि रक्खा था।

अभिलेख—

यहां लगभग ४०० छोटे बड़े अभिलेख प्राप्त हुये हैं। यह अभिलेख भित्तियों और मूर्तियों पर उत्कीर्ण हैं। कुछ शिलाओं

पर भी अभिलिखित हैं। कुछ बेतवा की तटवर्ती गुफाओं और पर्वत शिलाओं पर लिखे हुये प्राप्त हुये हैं। अधिकांश लेख दान के अवसरों पर उत्कीर्ण कराये गये हैं। जैन स्मारकों के लेखों में सबसे प्राचीन संवत् ६१६ का है। यहाँ के एक अभिलेख की लिपि मौर्य कालीन ब्राह्मी लिपि से बहुत कुछ मिलती जुलती है। यह अभिलेख साहू जैन संग्रहालय में रखा हुआ है। नाहरघाटी और दशावतार मन्दिर में दो अभिलेख ऐसे प्राप्त हुए हैं जो गुप्तकाल के हैं। सं० ६१६ का अभिलेख गुर्जर प्रतिहार शासक भोज के काल का है। यह मन्दिर नं० १२ के अर्धमण्डप में एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। संवत् ११२१ में गुर्जर प्रतिहार शासक राज्यपाल द्वारा एक मठ का निर्माण किया गया। मन्दिर नं० १८ में सं० १२१० के एक लेख के अनुसार महासामन्त उदयपाल ने मूर्तियों के निर्माण में आर्थिक सहयोग दिया था।

कुछ अभिलेखों में कुछ भौगोलिक नाम भी मिलते हैं, जैसे चन्देरीगढ़, पातीगढ़, लुअच्छा गिरि, गोपालगढ़, वेत्रवती, करनाटकी।

कुछ अभिलेखों में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं, जिससे अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के काल-निर्धारण में हमें सहायता मिलती है। इन महापुरुषों में कुछ इस प्रकार हैं-गुर्जर प्रतिहार शासक भोजदेव, भोज का महासामन्त विष्णु राम या चिन्द. राजपाल, गुर्जर, प्रतिहार वंश के अंतिम शासकों में से एक उदयपाल देव, सुल्तान महमूद, मालवा शासन सन् १४३५-७५ उदयसिंह, उदेतसिंह, देवीसिंह, दुर्गासिंह, बुन्देला शासक।

कला-वैविध्य —

यहां के सभी मन्दिर पाषाण के हैं और इनमें चूने गारे का कोई उपयोग नहीं किया गया है। यहां कला की विभिन्न कालों की विविध शैलियों के दर्शन होते हैं। यहाँ गुण और परिभाषा की दृष्टि से विविध प्रकार की कला—वस्तुएँ मिलती हैं। यहाँ पर पंचपरमेष्ठी, आचार्य, उपाध्याय, आर्यिकायें, भरत, बाहुबली, चौबीस तीर्थंकरों और उनकी शासन देवियों की अद्वितीय प्रतिमायें तथा भगवान की माता के स्वप्न, छप्पन कुमारिकाओं द्वारा सेवा, साधु पाठशाला, ज्ञान शिला पाषाण खण्डों पर चित्रित हैं। इन कलात्मक कलाकृतियों को हम सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) तीर्थंकर मूर्तियाँ—यहां तीर्थंकर मूर्तियां अन्य मूर्तियों की अपेक्षा अत्यधिक हैं। तीर्थंकर मूर्तियों में कुछ मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। मन्दिर नं० १२ के महामण्डप में एक सिंहासन पर एक शिलाफलक रक्खा हुआ है। इस फलक पर लगभग सवाचार फुट अवगाहना वाली एक मूर्ति है। यह यहां की सर्वाधिक प्राचीन मूर्तियों में से है। सिंहासन पर बीच में धर्मचक्र और उसके दोनों ओर सिंह बने हैं। मूर्ति के घुटने और नाक कुछ खंडित हैं।

मन्दिर नं० १५ के मण्डप में एक पद्मासन मूर्ति गुप्तकाल के तुरन्त बाद की है। वास्तव में यह मूर्ति भारतीय मूर्तिकला में अपने ढंग की अनूठी है।

सबसे विशाल मूर्तियों में मन्दिर नं० १२ में एक मूर्ति १२ फुट ४ इन्च की है। यह शान्तिनाथ भगवान की कहलाती है।

मन्दिर नं० ६ में पद्मासन मूर्ति, मन्दिर नं० ६ में खड्गासन अभिनन्दननाथ की मूर्ति और मन्दिर नं० १५ में पद्मासन नेमिनाथ की मूर्तियां सर्वश्रेष्ठ सुन्दर मूर्तियों में मानी जाती हैं। ये मूर्तियां गुप्तकाल की हैं। मन्दिर नं० २, २१ और २८ में भी कई मूर्तियां गुप्तकाल या उसके तत्काल बाद की हैं। ७ वीं से ११ वीं शताब्दी की तो अनेक मूर्तियां हैं।

यहां तीर्थंकर मूर्तियों में वैविध्य भी दर्शनीय है। यहां द्विमूर्तिकायें, त्रिमूर्तिकायें, सर्वतोभद्रिकायें, चौबीस प्रतिमायें प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं। यहां जटाओं सहित प्रतिमायें भी बहुत हैं। जटाओं के विविध रूप भी यहां देखने को मिलते हैं। कहीं पांच लटें कन्धे पर लहरा रही हैं तो कहीं कन्धे पर जाती हुई दो लटें लटकते बीथियों लटों में बदल गई हैं। कहीं सिर पर उठी हुई लटों की चोटी बंधी दिखाई पड़ती है तो कहीं लटें पैरों तक पहुँच रही हैं। ऐसा लगता है कि यहां आकर कला की धारा सारे विधि--विधानों और बंधनों को तोड़कर उन्मुक्त भाव से प्रवाहित हो उठी है

फणावली वाली प्रतिमायें प्रायः पार्श्वनाथ की होती हैं। किन्तु कुछ ऐसी फणावली प्रतिमायें भी यहां मिलती हैं जो पार्श्वनाथ के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरों की भी हैं। मन्दिर नं० १२ के महामण्डप में दाँये से बांयीं ओर तीसरी नेमिनाथ प्रतिमा तथा वहीं चहार दीवारी के प्रवेश द्वार के बाँयीं ओर बाहर ऊपर दूसरे स्थान पर सुमतिनाथ प्रतिमा के ऊपर फणावली है, जब कि इन दोनों तीर्थंकरों का लक्षण पादपीठ पर स्पष्ट अंकित है।

पंच फणावली वाली सुपार्श्वनाथ और सप्त फणावली युक्त पार्श्वनाथ प्रतिमायें भी अनेकों हैं। सर्प कुण्डली आसन बनाती हुई और पीठ के पीछे होती हुई ऊपर गर्दन तक गई है। उसके बाद सिर पर फणावली का छत्र तना हुआ है।

(२) देव-देवियों की मूर्तियां—यहां इन्द्र इन्द्राणी, यक्ष-यक्षी, विद्या देवियां, लक्ष्मी, सरस्वती, नवग्रह, गंगा-यमुना, नाग-नागनी, उद्घाषक, नवग्रह कीर्तिमुख, कीचक और क्षेत्रपाल आदि की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। इन्द्र, इन्द्राणी तीर्थंकरों के साथ दिखाये गये हैं। उद्घोषक देव भी तीर्थंकर परिकर में प्रदर्शित हैं। शेष देव और देवियों की मूर्तियों में तीर्थंकरों के साथ भी और स्वतंत्र भी अनेक मूर्तियां मिलती हैं। देव देवियों में से सर्वाधिक मूर्तियां यक्षियों की प्राप्त हुई हैं। यक्षों में केवल गौमुख, गौमेघ और धरणेन्द्र इन तीनों यक्षों की ही मूर्तियां मिलती हैं। मन्दिर नं०--३, १२, १६ २२ में गौमुख यक्ष मन्दिर नं०-१२, १३, १५ और २३ में गौमेघ यक्ष तथा मन्दिर नं० २४, २८ और अनेक स्तम्भों पर पद्मावती सहित धरणेन्द्र की मूर्तियां मिली हैं। धरणेन्द्र मूर्तियों में से एक और विचित्रता यहां देखने को मिलती है। धरणेन्द्र और पद्मावती दोनों की गोद में एक एक बच्चा भी कहीं कहीं दिखाया गया है।

यक्षियों में चक्रेश्वरी, अम्बिका और पद्मावती की मूर्तियां बहुतायत से मिलती हैं। ये तीर्थंकर मूर्तियों के साथ भी हैं। और स्वतन्त्र भी। स्वतन्त्र मूर्तियां अधिक हैं। ये देवकुलिकाओं में सिरदल पर और भित्तियों पर भी बनी हुई हैं। ये ललितासन

राजरत्नाभरणों से अलंकृत हैं। चक्रेश्वरी और पद्मावती बीस भुजी भी मिलती हैं। साहू जैन संग्रहालय में ऐसी दो मूर्तियाँ रखीं हैं दोनों के सिर पर तीर्थंकर मूर्तियां हैं। संग्रहालय में एक फलक पर लगभग तीन फुट ऊंची चक्रेश्वरी की ऐसी ही और एक मूर्ति रखी हुई है जिसके एक हाथ में वक्षमाला, एक हाथ में शंख, सात हाथों में चक्र हैं। ११ हाथ खंडित हैं। उसके परिकर में लक्ष्मी, सरस्वती और मालाधारी विद्याधर युगल हैं। संग्रहालय में चक्रेश्वरी की १ मूर्ति ४ फुट ४ इन्च की है। मन्दिर नं०-१९ में दस भुजी चक्रेश्वरी की मूर्ति है। किन्तु इसके हाथ खंडित हैं।

यहाँ अम्बिका की कई सौ मूर्तियां मिलतीं हैं। इसे नेमिनाथ के अलावा ऋषभनाथ मन्दिर नं०-४ की भीतरी पश्चिमी दीवार में तथा पार्श्वनाथ मन्दिर में नं०-१२ के महामण्डप में तीसरी मूर्ति के साथ भी दिखाया है। मन्दिर नं० १२ में अम्बिका की ५ फुट ७ इन्च ऊंची एक मूर्ति अत्यन्त सुन्दर और कला पूर्ण है।

पद्मावती की भी कई सौ मूर्ति यहाँ मिलती हैं। गोद में बालक लिये हुये तथा अकेली दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं।

मन्दिर नं० १२ के बाह्य भित्तियों पर यक्षियों के २४ फलक नीचे यक्षी का नाम और ऊपर तीर्थंकर मूर्ति है।

२—साधु-साध्वियों की मूर्तियां—यहां आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों और अर्जिकाओं की बहुत मूर्तियाँ हैं। सबके साथ पीछी तो अवश्य मिलती है किन्तु कभी-कभी कमण्डलु

नहीं दीख पड़ता । आचार्य परमेष्ठी पाठशाला में कुलपति के रूप में कहीं पढ़ाते हुये मिलते हैं। कहीं उपदेश मुद्रा में हाथ उठाकर उपदेश देते हुये दर्शाये हैं । कहीं-कहीं वे भक्तों को केवल आशीर्वाद देते हुये ही दर्शाये गये हैं ! उपाध्याय परमेष्ठी सदा एक हाथ में ग्रन्थ लिये हुये साधु या श्रावकों को पढ़ाने को मुद्रा में दिखाई देते हैं । साधु और साधुवियों प्रायः तीर्थंकरों आचार्यों और उपाध्यायों के समक्ष अंजुली बांधे हुये या बैठे हुये दिखाई देते हैं । कहीं पद्मासन या कायोत्सर्गासन में भी ध्यानलीन मिलते हैं । भरत-बाहुबली की युगल मूर्तियां यहां अनेक स्थानों पर हैं ।

(४) तीर्थंकर माता एवं श्रावक-श्राविका—मन्दिर नं० ४ के गर्भगृह की बांयी ओर लेटी हुई तीर्थंकर माता की २ फुट १० इन्च लम्बी एक मूर्ति भित्ति में जड़ी हुई है । माला, मुकुट, कर्ण कुण्डल, रत्न माला, केयूर, कंकण, मेखला, और पायल धारण किये हुये हैं । वह दांयीं करवट से लेटी हुई है । बगल में खड़ी एक देवो चमर ढोल रही है । एक पाँव पलोट रही है ऊपर तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । नीचे के भाग में एक पंक्ति का अभिलेख है । इसमें निर्माण काल सं० १'३० है ।

मन्दिर नं० ३० के गर्भगृह में एक शिलाफलक पर तीर्थंकर माता की एक मूर्ति है ।

श्रावक-श्राविकाओं की अनेक मूर्तियां मिलती हैं किन्तु वे तीर्थंकर आचार्य और उपाध्यायों के निकट अंजलीबद्ध या विन-

शासनत मुद्रा में मिलते हैं उनका स्वतन्त्र अंकन बहुत कम मिलता है।

(५) फुटकर मूर्तियां—इसमें हम प्रकृति-चित्रण प्रतिमाँकन और उत्सव आदि को ले सकते हैं। यहाँ के कलाकारों को कुछ धार्मिक नियम और मर्यादा के वातावरण में कार्य करना पड़ता था। किन्तु प्रकृति के इस सुषुमा-केन्द्र में बैठकर प्रकृति से सौन्दर्य से व्यामोहित न हो, यह कैसे संभव था। पर्वत की सुरम्य अधित्यका, नीचे कलकल शब्द करती हुई वेतवा, सुरभित समीर और पक्षियों के उन्मुक्त कुंजन से कलाकार मोहित हो गया। प्रकृति सौन्दर्य ही तो उसकी प्रेरणा शक्ति है। प्रकृति का स्वतन्त्र अंकन करने का अवकाश नहीं किन्तु मूर्तियों के बहाने उसने उदीयमान सूर्य, धवल ज्योत्सना बिखेरता पूर्णचन्द्र, प्रशान्त समुद्र, सरोवर में किलोलें करता हुआ मत्स्य-युगल, लक्ष्मी का अभिषेक करता हुआ गज-युगल अपनी ३२ सूंड़ों को लहराता ऐरावत हाथी, निर्धूम अग्नि, नागेन्द्र भवन, रत्नजड़ित सिंहासन आम्रगुच्छक, कल्पलता, अशोकवृक्ष, कमल पुष्पपत्रावली आदि का भव्य अंकन किया है। स्तम्भों देवकुलिकाओं और भित्तियों पर मूर्तियों और सिरदलों में उसने प्रकृति चित्रण किया है। वास्तव में यहां आकर उसकी कला अत्यन्त मुखर हो उठी है। आनन्द में भरकर उसने लोक जीवन के आनन्द पदों का भी, कठोर पाषाण को छेनी हथोड़े से अपनी इच्छानुकूल रूप देकर अंकन किया है। और कलाविदों ने कठिन पाषाणों में सूक्ष्म ललित कला का अंकन करने का सफल प्रयत्न किया।

इस प्रदेश पर किस वंश का कितने काल तक प्रभुत्व रहा, इसका कुछ आनुमानिक विवरण पुरातत्त्व विभाग ने देने का

प्रयत्न किया है। उसके अनुसार हजारों वर्षों पहिले यहाँ शवर जाति का आधिपत्य था। पश्चात् पाण्डवों, ईसा से ३००० वर्ष पूर्व, सहरी, समय अज्ञात, गौड़ समय अज्ञात, गुप्त बंश ३०० से ६०० ई०, देववंश ६५० से ६६१ ई०, चन्देलवश १६०० से १८११ ई०, तत्पश्चात् अंग्रेजों का यहाँ आधिपत्य रहा। सन् १८११ में महाराज सिन्धिया ने अपनी फौज भेजकर इस पर आधिपत्य कर लिया था। कुछ समय पश्चात् महाराज सिन्धिया से अंग्रेजों ने एक सन्धि की, जिसके अनुसार देवगढ़ अंग्रेजों ने ले लिया और उसके बदले चन्देरी का राज सिन्धिया को दे दिया।

देवगढ़ के किले की दीवाल कब किसने बनवायी, यह कहना कठिन है। किन्तु सुरक्षात्मक दृष्टि से यह दुर्ग अत्यन्त सुदृढ़ है। इसकी दीवार की मोटाई १५ फुट है। यह बिना गारे और चूना के केवल पाषाण की बनी हुई है। इसमें बुर्ज और गोला चलाने के लिए छेद भी बने हुये हैं। किले के उत्तर पश्चिमी कोने में दीवार की मोटाई २१ फुट और लम्बाई ६०० फुट है।

एक विशेष दिशा की ओर तब तक लोगों का ध्यान नहीं गया। देवगढ़ सुरक्षा गढ़ अवश्य रहा है। किन्तु यह कभी किसी की राजधानी नहीं रहा। प्रकृति ने एक ओर वेतवा नदी और पहाड़ों की अभेद्य प्राचीर खड़ी करके जो सुरक्षा प्रदान की है, उसके कारण विभिन्न राजवंशों ने इस अभेद्य दुर्ग के रूप में रक्खा और उसकी रक्षा के लिए कुछ सेना भी रखी, किन्तु यहाँ दुर्ग के भीतर राजमहल या सैनिकों की वैरकों के कई चिन्ह दृष्टि गोचर होते हैं। इसका उद्देश्य इतना ही हो सकता है कि इन देव मूर्तियों को सुरक्षित रक्खा जाये। राजवंशों ने इस दुर्ग पर

आधिपत्य के जो भी प्रयत्न किये वे केवल इस गौरव के लिये कि वह उन असंख्य देव-प्रतिमा केन्द्र का स्वत्वाधिकारी है जो कला सौष्ठव और विपुल परिणाम की दृष्टि से देश भर में अनुपम है। संभव है, अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इस प्रदेश पर दृष्टि रखने के लिये इसका सैनिक महत्व भी रहा हो। हमें लगता है, जब मुसलमान शासक यहां आये तो उन्होंने यहाँ की इस साँस्कृतिक निधि देव प्रतिमाओं का खुलकर विध्वंस किया। बुन्देलखड में लोग कहा करते है कि देवगढ़ में इतनी प्रतिमायें हैं कि यदि एक बोरी भरकर चावल ले जायें और एक प्रतिमा के आगे केवल एक चावल चढ़ाते जायें तब भी चावल कम पड़ जायेंगे। आज वहाँ चारों ओर बिखरे हुए भग्नावेशों को देखें तो उक्त बुन्देलखंडी कहावत असत्य नहीं जान पड़ती।

अतिशय—

इस क्षेत्र के चमत्कार के सम्बन्ध में भक्त जनों में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि क्षेत्र पर रात्रि के समय देव लोग पूजन के लिये आते हैं। वे आकर नृत्यगान पूर्वक पूजन करते हैं। कुछ ऐसे प्रत्यक्षदर्शी भक्त लोग हैं, जिन्होंने रात्रि के समय मन्दिरों से नृत्य और गान की ध्वनि आती सुनी है। शान्तिनाथ भगवान मनोकामना पूर्ण करते हैं जिसके अनेक उदाहरण वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।

हिन्दू मन्दिर—

यद्यपि कोट के भीतर केवल जैन मन्दिर मूर्तियाँ आदि ही मिलती हैं किन्तु इसके बाहर दो हिन्दू मन्दिर और कुछ

मूर्तियाँ हैं। नाहर घाटी में जो गुफा है, उसमें एक सूर्यमूर्ति, शिवलिंग और सप्त मातृकाओं के चिन्ह मिलते हैं। यही निकट हो किले के दक्षिण पश्चिम कोने पर वाराह जी का एक मन्दिर है। यह मन्दिर विध्वस्त पड़ा है। किले के नीचे एक विष्णु मन्दिर बना हुआ है। इसका ऊपर का अंश नष्ट हो चुका है। यह मन्दिर गुप्तकाल का कहा जाता है। यह मन्दिर पत्थर के जिन टुकड़ों से बना है, उन पर मूर्तियां खुदी हुई हैं। इसकी दीवारों पर रामायण के दृश्य अंकित हैं। गुप्तकाल की कला के प्रतिनिधि मन्दिरों में इस मन्दिर की गणना की जाती है।

मेला—

बीसवीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर कई बार विशाल आयोजन के साथ मेले हो चुके हैं, जिनमें हजारों-लाखों व्यक्तियों ने भाग लिया। पहला मेला सन् १९३४ में भरा था। उसके बाद सन् १९३६ में भरा। सन् १९३९ में गजरथ महोत्सव हुआ। तत्पश्चात् १९५४ में, फिर बहुत बड़े स्तर पर सन् १९५६ में मेला हुआ। सन् १९६५ में मुनिवर १०८ नेमिसागर जी महाराज का संघ सहित चातुर्मास हुआ। उसके कारण क्षेत्र पर भक्तजनों की खूब उपस्थिति रहती थी। इसी अवसर पर यहाँ क्षुल्लक दीक्षा भी हुई थी। इसके पश्चात् भी यहाँ मेले होते रहते हैं।

—卐—

इसकी कला सत्य है, शिव है,
सुन्दर, अजर अमर है ॥

[कवि श्री सरमनलाल 'सरस']

यही हमारी श्रमण-संस्कृती, भारत की पूँजी है ।
सत्य अहिंसा परमो धर्मः, ध्वनी जहां गूँजी है ॥

अनाचार अत्याचारों के, जो प्रतिकूल रहा है ।
वर्तमान जिसके वैभव पर, अब तक फूल रहा है ।

जिसके दर्शन के कारण दुनियां में चहल-पहल है ।
शिल्पकला, शिवकला, कला का पहला ताजमहल है ॥

करे चित्त को चकित, जहां पर ऐसी हर रेखा है ।
बिना देवगढ़ देखे लगता, सब कुछ अनदेखा है ॥

इतनी सुन्दरता है, जिस पर कुदरत का पहरा है ।
पत्थर के चोले में खुद, भगवान जहाँ ठहरा है ॥

प्रकृति-रूप उभरा है इतना, नचे मोर सा मन है ।
सदा यहाँ लगता है जैसे, आया हो सावन है ॥

अचरज होता है नजरों से, खुद ही नजर मिलाकर ।
किन हाथों ने "सरस" रख दिया, यहां स्वर्ग ये लाकर ॥

अगर देवता कहीं देख लें, यह अपना गढ़ आकर ।
तो हाथों हाथों ले जायेंगे, वे इसे उठाकर ॥

इसीलिए मत शोर मचाना, कहती डगर डगर है ।
इसकी कला सत्य है, शिव है, सुन्दर, अजर अमर है ॥

श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र देवगढ़ प्रबन्ध समिति

की

निर्माणाधीन-योजनायें

१. पर्वत पर मंदिरों का जीर्णोद्धार ।

२. पर्वत पर विशाल संग्रहालय ।

३. पर्वत पर धर्मशाला ।

४. प्राकृतिक चिकित्सालय ।

५. आधुनिक विधि युक्त धार्मिक शिक्षण हेतु गुरुकुल की स्थापना ।

६. जल एवं विद्युतीकरण की योजना ।

७. नीचे धर्मशाला में कमरों का निर्माण ।

मन्दिर नं० २८ का कलात्मक बाह्यभाग